वैशाली से अपनी अन्तिम यात्रा पर कुसिनारा की ओर चलते हुए भगवान् जिस प्रथम स्थान पर ठहरे वह भण्डगाम था। अंगुत्तर-निकाय[1] के स्पष्ट साक्ष्य पर यह गाँव वज्जि जनपद में था। भण्डगाम से चलकर भगवान् हत्थिगाम पहुचे थे। अतः भण्डगाम की स्थिति वैशाली और हत्थिगाम के बीच में थी।

हत्थिगाम वज्जि जनपद का एक गाँव था। संयुत्त-निकाय के वज्जि-सुत्त में इसे स्पष्टतः वज्जियों का ग्राम बताया गया है।[2] यह भण्डगाम और अम्बगाम के बीच स्थित था। वैशाली से कुसिनारा को जाते हुए भगवान् यहाँ ठहरे थे।[3] उग्गत या उग्ग गहपति, जो संघ-सेवक उपासकों में श्रेष्ठ था, इसी गाँव का निवासी सेठ था।[4] संयुत्त-निकाय के वज्जि-सुत्त का उपदेश भगवान् ने यही दिया था और उस समय उग्ग गहपति उनकी सेवार्थ उपस्थित था। हत्थिगाम के पास ही नागवन था। यह एक प्रमोद-वन था जिसका स्वामो उग्ग गहपति था। यहीं उग्ग गहपति प्रथम बार भगवान् बुद्ध से मिला था और उसकी दीक्षा हुई थी।[5] भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य का मत है कि हत्थिगाम के भग्नावशेष बिहार राज्य के आधुनिक हाथीखाल नामक गाँव के रूप में सम्भवतः देखे जा सकते है।[6]

हत्थिगाम से आगे चलकर भगवान् अम्बगाम (आम्रग्राम) पहुँचे थे और

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४९७।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३५। ऊपर से इक्कीसवीं पंक्ति में "जहाँ" और "अम्बगाम" के बीच मे "हत्थिगाम" छपने से रह गया है, जिससे यह शब्द नामानुक्रमणी मे भी नहीं आ सका है। मिलाइये बुद्धचर्या, पृष्ठ ४९७ भी।

४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४९६।

५. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ २१३; मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७६२।

६. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १७।

उससे आगे जम्बुगाम में।[1] इन दोनों गाँवों को वज्जि जनपद में ही मानना अधिक ठीक जान पड़ता है,[2] यद्यपि भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने अम्बगाम को मल्ल राष्ट्र में माना है,[3] जिसका तात्पर्य यह है कि उसके उत्तर मे स्थित जम्बुगाम को भी वे निश्चयतः मल्ल राष्ट्र में ही मानते है।[4] इन दोनों गाँवों के बारे मे वस्तुतः हम निश्चयतः नहीं कह सकते कि ये वज्जि गणतंत्र में थे या मल्ल राष्ट्र में। पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में इसके सम्बन्ध में कोई उल्लेख नही है। हम केवल इतना जानते है कि वज्जियों के हत्थिगाम से क्रमशः अम्बगाम और जम्बुगाम होते हुए भगवान् भोगनगर पहुँचे थे। भोगनगर के सम्बन्ध में भी यह अनिश्चित है कि वह वज्जि जनपद में था या मल्ल राष्ट्र में, यद्यपि हमने उसे मल्ल राष्ट्र मे ही माना है, और उसका विवेचन भी हम पहले मल्ल राष्ट्र के प्रसंग में कर चुके हैं। अम्बगाम और जम्बुगाम को विहार राज्य के क्रमशः अमया और जमुनही

---

१. देखिये प्रथम परिच्छेद में दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त के भौगोलिक महत्व का विवेचन तथा द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का भौगोलिक विवरण। मिलाइये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३५। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने अम्बगाम को हत्थिगाम और भोगनगर के बीच में तथा जम्बुगाम को भण्डगाम और हत्थिगाम के बीच में बता कर (कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १७) उस क्रम मे उलट-पुलट कर दिया है, जो इन स्थानों का महापरिनिब्बाण-सुत्त में पाया जाता है। महापरिनिब्बाण-सुत्त के अनुसार क्रम है, भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम और भोगनगर। "कुशीनगर का इतिहास" (पृष्ठ १७) मे इस क्रम को इस प्रकार रक्खा गया है, भण्डगाम, जम्बुगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम और भोगनगर। यद्यपि यह प्रूफ की अशुद्धि ही है, परन्तु इससे उनकी सब पहचानें सन्देह का कारण बन गई हैं।

२. लाहा ने भी ऐसा ही माना है, देखिये उनकी "इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म", पृष्ठ ५३।

३. बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ ४।

४. वस्तुतः है भी ऐसा ही। देखिये उनका "कुशीनगर का इतिहास" पृष्ठ ५७।

नामक ग्रामों से मिलाने का प्रस्ताव भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने किया है,[१] जो नाम-साम्यके विचार से तो ठीक जान पड़ता है, परन्तु भौगोलिक दृष्टि से स्थिति अभी स्पष्ट नहीं हुई है।

वेलुव (बेलुव भी) गाम या गामक वज्जि जनपद का एक छोटा सा गाँव था, जहाँ भगवान् ने अपना अन्तिम वर्षावास किया था। जैसा दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में वर्णित है, यही वर्षावास करते समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई थी। संयुत्त-निकाय के गिलान-सुत्त मे भी इसी बात का उल्लेख है। आचार्य बुद्धघोष ने हमें बताया है कि वेलुव गाम वैशाली नगरी के समीप उसके दक्षिण की ओर स्थित था। "वेसालिया दक्खिणपस्से अविदूरे वेलुव गामको नाम अत्थि।"[२] एक बार आयुष्मान् आनन्द को भी हम इस गाँव मे विहार करते देखते है, जहाँ अट्ठक नगर निवासी दसम गृहपति पाटलिपुत्र होता हुआ उनसे मिलने आया था।[३] एक अत्यन्त काव्यमय उद्गार मे अमितोदन शाक्य के पुत्र स्थविर अनुरुद्ध ने इस गाँव में निर्वाण प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी। "जीवन के अन्त में वज्जियों के वेलुव गाँव में, बाँस की झाडी के नीचे, आस्रव रहित हो मै निर्वाण को प्राप्त करूँगा।"[४] महाकवि अश्वघोष ने इस वेलुव गाम को "वेणुमती' ग्राम कह कर पुकारा है,[५] जिसे इसका ठीक संस्कृत प्रतिरूप माना जा सकता है।

वज्जि जनपद का एक गाँव पुब्बविज्झन[६] नामक था। सयुत्त-निकाय के

---

१. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १८।

२. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १२।

३. अट्ठक-नागर-सुत्तन्त (मज्झिम० २।१।२); मिलाइये अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३४२।

४. थेरगाथा, पृष्ठ २१६ (हिन्दी अनुवाद)।

५. बुद्ध-चरित २३।६२।

६. छन्नोवाद-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।५।२) में श्री नालन्दा से प्रकाशित संस्करण में 'पुब्बजिर' पाठ है। देखिये मज्झिम-निकाय पालि, तृतीय भाग, पृष्ठ ३५६। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपने अनुवाद में पब्बजितट्ठित भी पाठ दिया है। देखिये मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५८६। पुब्बविज्झन (या पुब्बविज्जन) पाठ संयुत्त-निकाय के छन्न-सुत्त के अनुसार है।

छन्न-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि यह गाँव आयुष्मान् छन्न, जिन्होंने कठिन बीमारी में आत्महत्या कर ली थी,[१] की जन्म-भूमि था। इसी सुत्त में धर्म-सेनापति सारिपुत्र भगवान् से कहते हैं, "भन्ते, पुब्बविज्झन नामक वज्जियों का एक ग्राम है। वहाँ आयुष्मान् छन्न के मित्र-कुल, सुहृद्-कुल और उपगन्तव्य (जिनके पास जाया जाये) कुल हैं।[२]"

कलन्दक गाम नामक एक गाँव वज्जियों के देश में वैशाली के समीप ही (अविदूरे) स्थित था। श्रेष्ठिपुत्र सुदिन्न कलन्दपुत्त यहीं का निवासी था। वह एक बार वैशाली आया था और भगवान् के उपदेश को सुनकर माता-पिता की अनुमति लेकर प्रव्रजित हो गया था।[३] विनय-पिटक[४] से हमें पता चलता है कि बाद मे इस सुदिन्न कलन्दपुत्त को लेकर ही प्रथम पाराजिका प्रज्ञप्त की गई थी। कलन्दक गाम के नाम के बारे में आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि कलन्दक (गिल-हरियों) की अधिकता के कारण इस गाँव का यह नाम पड़ा था।[५]

मल्ल जनपद का परिचय हम मल्ल गणतंत्र का विवेचन करते समय दे चुके हैं। अतः यहाँ पुनरुक्ति करना इष्ट न होगा।

कुरु जनपद सूरसेन और मच्छ जनपदों के उत्तर तथा पंचाल जनपद के पश्चिम में स्थित था। पंचाल उसका निकट पड़ोसी था, इसलिये दीघ-निकाय के जन-वसभ-सुत्त में उसे पंचाल के साथ मिलाकर "कुरुपंचालेसु" जैसा प्रयोग किया गया है। कुरु जनपद के उत्तर तथा पश्चिम में उत्तरापथ था। पालि तिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में जिस कुरु जनपद का परिचय हमें मिलता है, उसमें हम आधुनिक मेरठ, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, सहारनपुर, दिल्ली राज्य, कुरुक्षेत्र और थानेश्वर को सम्मिलित मान सकते हैं। द्वितीय परिच्छेद में चार महाद्वीपों का विवरण देते समय हम दिखा चुके हैं कि राजा मान्धाता के साथ उत्तरकुरु

---

१. देखिये छन्नोवाद-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।५।२) भी।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४७७।

३. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २०२।

४. पृष्ठ ५४२ (हिन्दी अनुवाद))

५. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २०२।

महाद्वीप से कुछ लोग चले आये थे जो यही जम्बुद्वीप में बस गये थे। इन्हीं लोगों ने कुरु राष्ट्र को बसाया था। महासुतसोम जातक में कुरु राष्ट्र का विस्तार ३०० योजन बताया गया है। "तियोजनसते कुरुरट्ठे"। मज्झिम-निकाय के रट्ठपाल-सुत्तन्त से हमें पता चलता है कि बुद्ध के जीवन-काल में कुरु एक समृद्ध राष्ट्र था। सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि इस जनपद की जलवायु अच्छी है और यहाँ के लोग स्वस्थ और प्रसन्नचित्त होते है. . "कुरुदेशवासी भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाएँ, ऋतु आदि के अनुकूल होने से, देश के अनुकूल ऋतु आदि युक्त होने से , हमेशा स्वस्थ-शरीर और स्वस्थ-चित्त होते है"।[1] भगवान् बुद्ध ने स्मृति-प्रस्थान तथा अन्य गम्भीर विषयों से सम्बन्धित कई उपदेश कुरु देश में दिये थे, क्योंकि वहाँ के स्वस्थ और प्रज्ञावान् भिक्षु उन्हे ग्रहण करने में समर्थ थे, ऐसा सुमंगलविलासिनी मे कहा कहा गया है। कुरु देश के जन-साधारण तक का जीवन अध्यात्म से इतना आप्लावित था कि "दास और कर्मकर तथा नौकर-चाकर भी स्मृति-प्रस्थान सम्बन्धी कथा को ही कहते है। पनघट और सूत कातने के स्थान आदि में भी व्यर्थ की बात नही होती"[2]। धूमकारि-जातक और दस-ब्राह्मण जातक में कहा गया है कि कुरु देश के राजा युधिट्ठिल गोत्त (युधिष्ठिर गोत्र) के थे। कुरुधम्म जातक, धूमकारि-जातक, सम्भव-जातक और विधुरपंडित-जातक में कुरु देश के राजा धनंजय कोरब्य का उल्लेख है। दस-ब्राह्मण जातक तथा महा-सुतसोम-जातक में कुरु देश के कोरब्य नामक राजा का उल्लेख है। इसी प्रकार कुरु देश के सुतसोम नामक राजा का उल्लेख भी महासुतसोम-जातक में पाया जाता है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल मे कुरु देश में शासन करने वाले राजा का नाम कोरब्य (कौरव्य) था, जो कुरु देश के थुल्लकोट्ठित नामक प्रसिद्ध निगम में रहता था। जिस समय आयुष्मान् रट्ठपाल उससे मिले थे, उसकी आयु अस्सी वर्ष की थी।[3] इससे मालूम पड़ता है कि वह आयु में भगवान् बुद्ध से सम्भवतः

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ११०-१११, पद-संकेत १; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १८४।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ ११, पद-संकेत १।

३. रट्ठपाल-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।२)।

काफी बड़ा था। धम्मपदट्ठकथा में हम कोसलराज महाकोसल के पुरोहित अग्गिदत्त (अग्निदत्त) को अपने दस हजार शिष्यों के साथ कुरु और अंग-मगध देशों की सीमा पर आश्रम बनाकर निवास करते देखते हैं। आचार्य बुद्धघोष ने पपंचसूदनी में कहा है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कुरु राष्ट्र में किसी विहार की स्थापना नहीं हुई थी। इसलिये इस राष्ट्र में आने पर भगवान् निश्चित निवास न प्राप्त कर सकने के कारण अक्सर इसके कस्बे कम्मासदम्म के समीप एक बन में ठहरते थे, जिसके सम्बन्ध में हम अभी आगे कहेंगे।

कुरु राष्ट्र की राजधानी, जातक के अनुसार, इन्दपत्त या इन्दपट्ट (इन्द्र-प्रस्थ) नामक नगरी थी। इस नगर को महाभारत के इन्द्रप्रस्थ से मिलाया गया है, जिसकी स्थिति दिल्ली के पुराने किले के आसपास ही होनी चाहिये। महासुतसोम जातक के अनुसार इन्दपत्त नगर का विस्तार सात योजन था। "सत्तयोजनिके इन्दपत्तनगरे"। विधुर-पंडित जातक मे भी इन्दपत्त नगर का विस्तार सात योजन बताया गया है। इन्दपत्त "उत्तरापथ" मार्ग पर पड़ने वाला एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। अंग, मगध, विदेह, कोसल और वाराणसी के व्यापारी इन्दपत्त होते हुए ही तक्षशिला जाते थे।

इन्दपत्त या सम्भवतः हस्तिनापुर के समीप थुल्लकोट्ठित या थुल्लकोट्ठिक नामक कुरु जनपद का एक प्रसिद्ध निगम था, जहाँ राजा कौरव्य (कोरब्य) निवास करता था। स्थविर रट्ठपाल का जन्म इस कस्बे मे एक वैश्य-कुल में हुआ था। मज्झिम-निकाय के रट्ठपाल-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को इस कस्बे में विहार करते देखते है। इसी समय रट्ठपाल की प्रव्रज्या हुई थी। थुल्लकोट्ठित के समीप राजा कौरव्य का "मिगाचीर" नामक एक सुरम्य उद्यान था। एक बार स्थविर रट्ठपाल जब अपनी जन्म-भूमि में आये तो यहीं ठहरे थे।[1] "मिगाचीर" नामक एक उद्यान वाराणसी में भी था, जिसका उल्लेख हम काशी जनपद के विवरण-प्रसंग में कर चुके हैं। थुल्लकोट्ठित कुरु राष्ट्र का एक अत्यन्त समृद्ध और धनधान्यसम्पन्न कस्बा था। आचार्य बुद्ध-

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३२; मिलाइये थेरगाथा, गाथाएँ ७६९-७९३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

घोष ने कहा है कि इस कस्बे का नाम "थुल्लकोट्ठित" इसलिये पड़ा कि यहाँ के लोगों के कोठे अनाज से सदा भरे रहते थे। "थुल्लकोट्ठं, परिपुण्णकोट्ठागारं"[१]। महाकवि अश्वघोष ने थुल्लकोट्ठित का नाम 'स्थूलकोष्ठक' दिया है और यहाँ राष्ट्रपाल की दीक्षा का वर्णन किया है।[२] इस कस्बे की आधुनिक पहचान अभी नहीं हो सकी है। परन्तु रट्ठपाल-सुत्तन्त में हम रट्ठपाल को अपने पिता से यह कहते सुनते हैं कि अच्छा होगा कि वह अपनी सारी सम्पत्ति को गंगा में डलवा दे। इससे लगता है कि थुल्लकोट्ठित को हमें हस्तिनापुर के आसपास ही कहीं ढूँढ़ना पड़ेगा। इन्दपत्त के समान हस्तिनापुर के आसपास भी राजा कौरव्य का निवास-स्थान हो सकता है।

कम्मासदम्म कुरुओं का एक अन्य प्रसिद्ध निगम था। भगवान् यहाँ कई बार गये थे और उपदेश दिया था। दीघ-निकाय के महानिदान-सुत्त तथा महासति-पट्ठान-सुत्त जैसे गंभीर उपदेश इस कस्बे मे दिये गये थे। इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के सतिपट्ठान-सुत्तन्त, मागन्दिय-सुत्तन्त तथा आनञ्ज-सप्पाय-सुत्तन्त के उपदेश यहीं दिये गये थे। मज्झिम-निकाय के मागन्दिय-सुत्तन्त से हमे पता लगता है कि इस कस्बे के पास भारद्वाज गोत्र के एक ब्राह्मण का आश्रम था जहाँ भगवान् ने निवास किया था। मागन्दिय परिव्राजक से भगवान् का संलाप इसी स्थान पर हुआ था। संयुत्त-निकाय के निदान-सुत्त और सम्मसन-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कम्मास-दम्म में विहार करते समय ही दिया था। अंगुत्तर-निकाय[३] में भी भगवान् के कुरुओं के इस निगम में जाने और उपदेश करने का उल्लेख है। नन्दुत्तरा और मित्तकाली नामक भिक्षुणियों का जन्म कुरु राष्ट्र के इस प्रसिद्ध निगम में ही हुआ था।[४] परमत्थदीपनी (थेरीगाथा की अट्ठकथा) में कहा गया है कि नन्दुत्तरा ने पहले निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।[५] इससे विदित होता है कि जैनधर्म का प्रसार बुद्ध-काल में कुरु राष्ट्र में भी था।

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७२२।

२. बुद्ध-चरित २१।२६।

३. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २९-३०।

४. थेरीगाथा, पृष्ठ ५६-५७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

५. उपर्युक्त के समान।

दिव्यावदान[1] में कल्माषदम्य कस्बे का उल्लेख है। और इसी प्रकार बुद्ध-चरित (२१।२७) में महाकवि अश्वघोष ने भी इस कस्बे का नाम 'कल्माषदम्य' दिया है और भारद्वाज नामक एक विद्वान् के बुद्ध-धर्म में दीक्षित होने की बात कही है। हम पालि परम्परा के आधार पर इस गाँव के पास एक भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण के आश्रम का उल्लेख पहले कर ही चुके हैं। उसी से अभिप्राय सम्भवतः अश्वघोष के भारद्वाज नामक विद्वान् का हो सकता है। यह उल्लेखनीय है कि भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण आज भी मेरठ-बुलन्दशहर जिलों में काफी संख्या में रहते हैं।

जयद्दिस जातक की कथा से 'कम्मासदम्म' कस्बे के नामकरण के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस जातक की कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्व कम्पिल्ल के राजा जयद्दिस के पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे। इस राजा का एक अन्य पुत्र भी था जिसे एक यक्षिणी (यक्खिणी) पकड़ कर ले गई थी और उसे एक नर-भक्षी दैत्य बना लिया था। इस राजकुमार के पैर (पाद) में एक बार घाव लग जाने के कारण धब्बा (कम्मास) पड़ गया था, इसलिये वह 'कम्मासपाद' कहलाता था। राजा ने उसे घर लाने के अनेक उपाय किये। अन्त में बोधिसत्व ने उसे दमित कर अपने वश में किया। जिस स्थान पर बोधिसत्व ने यह कार्य किया, वह कम्मासदम्म (कल्माषदम्य) कहलाया, क्योंकि वहाँ कम्मास या कम्मासपाद को दमित किया गया था। महासुतसोम जातक में भी इसी प्रकार सुतसोम बोधिसत्व के द्वारा कल्माषपाद यक्ष का दमन करना दिखाया गया है और इसी कारण उस स्थान का 'कम्मासदम्म' नाम पड़ना बताया गया है। यहाँ यह अन्तर द्रष्टव्य है कि जयद्दिस जातक में स्थान का नाम चुल्लकम्मासदम्म दिया गया है जब कि महासुतसोम जातक में महाकम्मासदम्म। इन जातकों से यह विदित होता है कि कम्मासदम्म नामक दो कस्बे अलग-अलग थे, जिनमें एक छोटा था जो कम्पिल्ल राष्ट्र में था और दूसरा बड़ा, जो कुरु राष्ट्र में था और दोनों ही दैत्य कल्माषपाद की स्मृति से जुड़े हुए थे। कुरु राष्ट्र का कम्मासदम्म ही वास्तव में महाकम्मासदम्म है। इस कम्मासदम्म कस्बे के नाम के दो पाठ पालि परम्परा में मिलते हैं, "कम्मासदम्म" और "कम्मासधम्म"। "कम्मासदम्म" नाम इस कस्बे का क्यों पड़ा, इसका कारण बताते

---

१. पृष्ठ ५१५।

हुए आचार्य बुद्धघोष ने जातक का ही अनुसरण करते हुए कहा है कि कम्मास (कल्माष) या कम्मासपाद ((कल्माषपाद) नामक एक नरभक्षी दानव था, जिसका यहाँ दमन किया गया था, इसलिये इस कस्बे का नाम "कम्मासदम्म" पड़ा। "कम्मासोति कम्मासपादो पोरिसादो वुच्चति। कम्मासो एत्थ.दमितो ति कम्मासदम्मं"। "कम्मासधम्म" की उनके द्वारा की हुई व्याख्या भी इसी अनुश्रुति पर आधारित है और. वह इस प्रकार है.. कुरु राष्ट्र वासी लोगो का "कुरु धम्म" या "कुरुवत्थ धम्म" नामक एक नैतिक मर्यादा-विधान था। उसमें कम्मास दैत्य उत्पन्न (दीक्षित) हुआ, इसलिये यह स्थान "कम्मास यहाँ धम्म में उत्पन्न (दीक्षित) हुआ" इस कारण कम्मासधम्म कहलाता है"। "कुरुरट्ठवासीनं किर कुरुवत्थधम्मो, तस्मिं कम्मासो जातो, तस्मा तं ठानं कम्मासो एत्थ धम्मे जातो ति कम्मासधम्मं ति वुच्चति"[1] इस प्रकार हम देखते है कि कम्मासदम्म कस्बे के साथ कलमाषपाद नामक दैत्य की कहानी संग्रथित है। बौद्ध साहित्य के बाहर भी कलमाषपाद का नाम प्रसिद्ध है। वाल्मीकि-रामायण मे राजा कलमाषपाद को रघु का पुत्र बताया गया है। महाभारत के आदि-पर्व में भी कल्माषपाद को इक्ष्वाकुवंशी राजा बताया गया है और उसकी पत्नी और वशिष्ठ के संयोग से उत्पन्न पुत्र अश्मक के द्वारा पौदन्य (पोतन या पोदन) नामक नगर की स्थापना का उल्लेख किया गया है। इसी कथा का कुछ अल्प अन्तर के साथ वर्णन नारद-पुराण में है। यहाँ कहा गया है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुदास के पुत्र मित्रसह का ही नाम उसके राक्षसी रूप प्राप्त कर लेने के बाद 'कल्माषपाद' पड़ गया था। एक बार इस राजा ने अनजान में वशिष्ठ को नर-मांस परोस दिया था, जिस पर वशिष्ठ ने उसे नरभक्षी राक्षस होने का शाप दे दिया था। "नृमांसं रक्षसामेव भोज्यं दत्तं मम त्वया। तद्याहि राक्षसत्वं त्वं तदाहारोचितं नृप।" नारद-पुराण ९।२६। इस प्रकार शप्त होने पर राजा मित्रसह ने भी वशिष्ठ को शाप देना चाहा, परन्तु उसकी रानी मदयन्ती ने उसे रोक दिया। शाप के जल को राजा ने कहीं अन्यत्र

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८३; कुरु-धर्म के समान वज्जि-धर्म और शिवि-धर्म जैसे विधान क्रमशः वज्जि और शिवि राष्ट्रों में भी प्रचलित थे। देखिए इन राष्ट्रों के इसी परिच्छेद में दिये गये विवरण।

न गिरा कर अपने पैरों पर ही गिरा दिया, जिससे उसके पैर चितकबरे हो गये। तभी से उसका नाम 'कल्माषपाद' पड़ गया। "इति मत्वा जलं तत्तु पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम्। तज्जलस्पर्शमात्रेण पादौ कल्मषतां गतौ। कल्माषपाद इत्येवं ततः प्रभृति विस्तृतः"। नारद-पुराण ९।३५-३६। इसमें कोई सन्देह नही कि नारद-पुराण का नरभक्षी राक्षस कल्माषपाद ही पालि परम्परा का 'कम्मासपादो पोरिसादो' है। महासुतसोम जातक के अनुसार इस राक्षस का दमन 'कम्मासदम्म' कस्बे के स्थान पर कुरु देश मे हुआ, जब कि नारद-पुराण के अनुसार उसने वाराणसी मे छह मास तक गंगा में स्नान करने के बाद पवित्रता प्राप्त की। परन्तु महासुतसोम जातक में भी मनुष्य-मांस के प्रेमी इस राक्षस को पहले वाराणसी का राजा ही बताया गया है। यह एक भारी समानता है। नारद-पुराण में राजा कल्माषपाद के नर्मदा के वन में मृगया के लिये जाने का भी उल्लेख है।

मज्झिम-निकाय के मागन्दिय-सुत्त से हमें पता चलता है कि कम्मासदम्म निगम के पास एक वन-खण्ड था। भगवान् कम्मासदम्म में जाते समय इस वन-खण्ड में ही दिन का ध्यान करते थे।

कम्मासदम्म कस्बे की आधुनिक पहचान अभी निश्चित नही की जा सकी है। परन्तु इस लेखक का अनुमान है कि कस्बा बागपत (जिला मेरठ) से सात-आठ मील दूर यमुना के उस पार पजाब राज्य में स्थित कमासपुर या कुमासपुर कस्बा बुद्धकालीन कम्मासदम्म हो सकता है। समीप में वन-खण्ड होने की शर्त को यह गाँव आज तक पूरी करता है। यहां कुछ भारद्वाज गोत्री ब्राह्मण भी निवास करते हैं।

कुण्डो, कुण्डिय या कुण्डिकोल नामक ग्राम कुरु राष्ट्र मे था। इस गाँव के समीप एक वन था, जहाँ स्थविर अगणिक भारद्वाज रहते थे। इसीके समीप उग्गाराम था।[1] सम्भवतः आधुनिक कुण्डली नामक गाँव, जो जिला रोहतक की सोनीपत तहसील में है, बुद्धकालीन कुण्डो, कुण्डिय या कुण्डिकोल गाम है।

हत्थिपुर या हत्थिनोपुर कुरु जनपद का एक प्रसिद्ध निगम था। चेतिय जातक के अनुसार चेदि नरेश उपचर के सबसे बड़े पुत्र ने इस नगर को बसाया था। इसी जातक के अनुसार यह नगर चेति (चेतिय) राज्य की राजधानी सोत्थिवती के पूर्व में स्थित था। दीपवंस के वर्णनानुसार हत्थिपुर में महासम्मत वंश के ३६ राजाओं

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३९।

ने राज्य किया, जिनमें अन्तिम कम्बलवसभ नामक राजा था। पेतवत्थु की अट्ठकथा के अनुसार हत्थिनीपुर में सेरिणी नामक एक गणिका रहती थी। पालि के हत्थिपुर या हत्थिनीपुर को प्रायः निश्चित रूप से प्रसिद्ध हस्तिनापुर से मिलाया जा सकता है, जिसे महाभारत के आदि-पर्व में कुरुजांगल (कुरुवन) में स्थित बताया गया है और जो आज मेरठ जिले की मवाना तहसील में मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व गंगा के दायें तट पर स्थित है। हाँ, पालि विवरणों में इसके समीप गंगा के होने का कोई उल्लेख नहीं है, जैसा कि रामायण, महाभारत और पुराणों में निश्चित रूप से है।

वारणवती नगरी सम्भवतः कुरु राष्ट्र में थी। 'थेरीगाथा' में इस नगरी का उल्लेख है। सुमेधा का विवाह इसी नगरी के राजा अनिकरत्त के साथ होने वाला था, ऐसा यहाँ कहा गया है। "उट्ठेहि पुत्तक कि सोचितेन दिन्नासि वारणवतिम्हि। राजा अनिकरत्तो अभिरूपो तस्स त्वं दिन्ना"।[1] थेरीगाथा की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) के अनुसार सुमेधा मन्तावती नगरी के क्रौञ्च (कोञ्च) नामक राजा की पुत्री थी। परन्तु यह मन्तावती नगरी कहाँ थी, इसका भी कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता। जहाँ तक वारणवती का सम्बन्ध है, उसे हम कदाचित् महाभारत के उद्योग-पर्व के वारणावत से, जिसे वहाँ कुरु राष्ट्र का एक गाँव बताया गया है, मिला सकते है। और इस प्रकार उसका आधुनिक रूप बरनावा नामक गाँव के रूप में माना जायगा, जो मेरठ से १९ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यह भी सम्भव है कि वारणवती का सम्बन्ध वरणावती नदी से हो। इस अवस्था मे उसे वाराणसी के आसपास मानना पडेगा।

महाकवि अश्वघोष ने वरणा में भगवान् बुद्ध के प्रचार कार्य का उल्लेख किया है।[2] अंगुत्तर-निकाय के दुक-निपात के एक सुत्त मे भी हम स्थविर महाकात्यायन को वरणा में कद्दम दह के तट पर विहार करते देखते है। यह वरणा आधुनिक बुलन्दशहर नगर ही है। यहाँ एक बौद्ध विहार के भग्नावशेष और काफी संख्या में बुद्धमूर्तियाँ मिली हैं, जो स्थानीय शिक्षा-संग्रहालय में सुरक्षित है। इस नगर के एक अंश

---

१. थेरीगाथा, गाथा ४६२ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. बुद्ध-चरित २१।२५; मिलाइये वहीं २१।२१।

में एक प्राचीन तालाब भी दबा पड़ा है। सम्भव है वह कद्दम दह (कर्दम ह्रद) की स्थिति पर ही हो। महाकवि अश्वघोष ने वाराणसी से पृथक् वरण या वरणा का उल्लेख किया है।[1] अतः वरणा या अथर्ववेद (१४।७।१) की वरणावती नदी से सम्बद्ध कर हम उसे वाराणसी से सम्बन्धित नही कर सकते। पालि का वरणा निश्चयतः एक नगर था, नदी नही, और उसे कुरु जनपद के अन्तर्गत वर्तमान बुलन्दशहर नगर मानना ही भौगोलिक और पुरातात्विक दृष्टियो से युक्तिसंगत है।

मध्य-देश की पश्चिमी सीमा पर स्थित थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम कुरु जनपद में ही था। द्वितीय परिच्छेद में हम उसका विवरण उपस्थित कर चुके हैं। अतः उसकी पुनरुक्ति करना यहाँ आवश्यक न होगा।

पंचाल जनपद सूरसेन और कोसल जनपदो के बीच मे स्थित था। पंचाल के पश्चिमोत्तर मे कुरु राष्ट्र था और दक्षिण-पूर्व में वंस राज्य। पंचाल जनपद दो भागों में विभक्त था, उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल। भागीरथी (भागीरसी) नदी इन दोनों को एक दूसरे से अलग करती थी। पूर्व काल में पंचाल और कुरु राष्ट्रों में उत्तर पचाल के लिये काफी सघर्ष चला था। कई बार उत्तर पंचाल कुरु राष्ट्र में सम्मिलित हो गया था। सोमनस्स जातक में इसी स्थिति का वर्णन है। कुम्भकार जातक में उत्तर पंचाल की राजधानी कम्पिल नगर बताई गई है, परन्तु सोमनस्स जातक में कहा गया है कि उत्तर पंचाल की राजधानी उत्तरपंचाल नामक नगर ही था। उत्तरपंचाल नगर को चेतिय जातक के अनुसार चेति (चेदि) देश के राजा उपचर के एक पुत्र ने बसाया था। जातक में कम्पिल्ल रट्ठ का भी उल्लेख हुआ है। उससे या तो दक्षिण पचाल का ही अभिप्राय हो सकता है, या संभवतः सम्पूर्ण पंचाल राष्ट्र का भी। ब्रह्मदत्त जातक, जयद्दिस जातक और गण्डतिन्दु जातक में उत्तरपंचाल को कम्पिल्ल रट्ठ का नगर बताया गया है। कुम्भकार जातक में कहा गया है कि कभी-कभी कम्पिल्ल रट्ठ के राजा उत्तरपंचाल नगर में दरबार लगाते थे और कभी-कभी उत्तर पंचाल के राजा कम्पिल्ल नगर में। इस विवरण से स्पष्ट है कि "कम्पिल्ल" को नगर और राष्ट्र दोनों का नाम देने के कारण और उत्तर और दक्षिण पंचाल को कभी-कभी अलग और कभी संयुक्त

---

१. देखिये बुद्ध-चरित २१।२५ तथा मिलाइये वहीं, २१।२१।

रूप से प्रयुक्त करने के कारण जातकों के विवरणों मे कहीं-कहीं अस्पष्टता आ गई है। नगर के रूप में कम्पिल्ल को उत्तरपंचाल की राजधानी बताया गया है, परन्तु रट्ठ के रूप मे कम्पिल्ल की राजधानी उत्तरपंचाल नगर को बताया गया है। उत्तर पंचाल का भी नगर और राष्ट्र के रूप में दुहरा वर्णन कर देने के कारण और अस्पष्टता आ गई है।

ऊपर हम सोमनस्स जातक के आधार पर प्राचीन काल में उत्तर पंचाल के कुरु राष्ट्र में सम्मिलित होने की बात कह चुके है। दिव्यावदान[1] में इसी स्थिति की ओर निर्देश करते हुए उत्तर पंचाल की राजधानी हस्तिनापुर नगरी बताई गई है। जातकों में पंचाल देश के दो राजाओ के विवरण भी प्राप्त है। कुम्भकार जातक में पंचालराज दुम्मुख (दुर्मुख) का उल्लेख है, जिसका राज्य उत्तर पंचाल रट्ठ कहकर पुकारा गया है और राजधानी कम्पिल्ल नगर। इस राजा को यहाँ गन्धार के राजा नग्गजि (नग्नजित्) और विदेह के राजा निमि का समकालीन बताया गया है। महा उम्मग्ग जातक में पंचालराज चूलनि ब्रह्मदत्त का उल्लेख है, जिसके अमात्य केवट्ट ने उसे सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का सम्राट् बनने की प्रेरणा दी और इसी उद्देश्य से चूलनि ब्रह्मदत्त ने मिथिला का घेरा भी डाला। इस घटना में ऐतिहासिक तथ्य कितना है, यह नही कहा जा सकता और यदि हो भी तो इसे बुद्ध-पूर्व काल की घटना ही माना जा सकता है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में तो ऐसा लगता है कि दक्षिण पचाल का कुछ भाग वंस राज्य में सम्मिलित हो गया था और सम्भवतः उत्तर पंचाल का कुछ भाग, जो वन-प्रदेश के रूप में था, कोसल राज्य में।

पालि साहित्य में जिस पंचाल राष्ट्र का उल्लेख है, उसकी सीमाओं के अन्तर्गत आधुनिक एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और आसपास के जिलों को रक्खा जा सकता है।[2] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने रुहेलखंड और गंगा-यमुना के दोआब के कुछ भाग को पंचाल देश में सम्मिलित माना है।[3] प्रारंभिक रूप में पंचाल जनपद से

---

१. पृष्ठ ४३५।

२. मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४१२, ७०५।

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १३४।

तात्पर्य उस प्रदेश से लिया जाता था जो दिल्ली से उत्तर और पश्चिम, हिमालय की तराई से लेकर चम्बल तक फैला हुआ था।[1] पालि परम्परा के पंचाल को इससे भिन्न समझना चाहिये।

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, सोमनस्स जातक के आधार पर उत्तर पंचाल की राजधानी उत्तरपंचाल नामक नगर ही था। महाभारत के आदि-पर्व में उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती नामक नगर बताया गया है, जिसे वर्तमान रामनगर (जिला बरेली, उत्तर-प्रदेश) से मिलाया जाता है। इसलिये हम पालि के उत्तरपंचाल नगर को महाभारत के अहिच्छत्र या छत्रवती नगर से अभिन्न मान सकते हैं।

कम्पिल्ल नगर को जातक में अनेक जगह उत्तर पंचाल की राजधानी बताया गया है। परन्तु इसे भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण पंचाल या दक्षिण पंचाल की राजधानी ही माना जा सकता है। कम्पिल्ल नगर को जनरल कनिङ्घम के द्वारा आधुनिक काम्पिल से मिलाया गया है, जो उत्तर-प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में, फतेहगढ़ से २८ मील उत्तर-पूर्व, गंगा के समीप स्थित है।[2] संयुत्त-निकाय के दुतिय-दारुक्खन्ध-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को गंगा नदी के तट पर किम्बिला में विहार करते देखते हैं।[3] यहाँ या पालि तिपिटक में कहीं अन्यत्र यह उल्लेख नहीं किया गया है कि यह किम्बिला नामक स्थान किस जनपद में था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने मज्झिम-निकाय के हिन्दी-अनुवाद के आरम्भ में बुद्धकालीन मध्य-मंडल का जो मानचित्र दिया है, उससे विदित होता है कि वे किम्बिला को ही कम्पिल्ल या आधुनिक काम्पिल मानते हैं। गंगा नदी पर कम्पिल्ल नगर (आधुनिक काम्पिल) की स्थिति उसे किम्बला से मिलाने के लिये हमें आकृष्ट करती है, परन्तु इसकी समुचित व्याख्या नहीं मिलती कि यदि ये दोनों स्थान एक ही थे तो स्वयं

---

१. नन्दलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ १४५।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४१३; आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया की रिपोर्ट, जिल्द पहली, पृष्ठ २५५।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५२६।

जातक[1] में अलग से किम्बिला नगरी का उल्लेख क्यों है? फिर भी इन दोनों नामों में शब्द-साम्य इतना अधिक है कि वर्ण-परिवर्तन के आधार पर इन दोनों की अभिन्नता सिद्ध की जा सकती है। जैसे किमिकाला के लिये किपिल्लिका के पाठान्तर को हम स्वीकार करते है और उन दोनों को एक समझते हैं,[2] उसी प्रकार किम्बिला को भी कम्पिल्ल मान सकते है। कम्पिल्ल नगर को किम्बिला मानकर हमें यह और कह देना चाहिये कि किम्बिला (कम्पिल्ल नगर) में एक वेणुवन भी था, जहा सयुत्त-निकाय के किम्बिल-पुत्त के अनुसार भगवान् ने आयुष्मान् किम्बिल के साथ विहार किया था। इस वेणुवन का ही दूसरा नाम सभवतः निचेलुवन था। या निचेलुवन को किम्बिला में स्थित एक पृथक् वन भी हम मान सकते है। एक बार भगवान् को हम यहाँ विहार करते अंगुत्तर-निकाय के पंचक-निपात मे देखते है। "एकं समयं भगवा किम्बिलायं विहरति निचेलुवन।" यहीं आयुष्मान् किम्बिल का भगवान् से संवाद हुआ था।[3] अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[4] के अनुसार सेट्ठिपुत्त किम्बिल का जन्म-स्थान किम्बिला नगरी ही थी। इस श्रेष्ठिपुत्र किम्बिल को उन आयुष्मान् किम्बिल से पृथक् समझना चाहिये जो शाक्य-कुल से प्रव्रजित कपिलवस्तु के भिक्षु थे।

बौद्ध धर्म की दृष्टि से पचाल देश का काफी महत्व है। भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्य स्थविर विसाख पंचालपुत्त पचाल देश के ही निवासी थे। भगवान् जब वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहार कर रहे थे तो विसाख पंचालपुत्त ने वहाँ की उपस्थानशाला मे भिक्षुओं के समक्ष उपदेश दिया था, जिसका भगवान् ने अनुमोदन किया था।[5]

---

१. जिल्द छठी, पृष्ठ १२१।

२. देखिये आगे चेति (चेतिय) जनपद का विवेचन।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४७, ३३९; जिल्द चौथी, पृष्ठ ८४।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६४२।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३१४।

संकस्स (या संकिस्स) पंचाल देश का एक मुख्य नगर था। तावतिंस (त्राय-स्त्रिंश) लोक में अपना सातवाँ वर्षावास कर भगवान् महाप्रवारणा के दिन पंचाल देश के इस नगर में ही उतरे थे। स्थविर सुहेमन्त ने इस नगर में ही भगवान् बुद्ध से उपदेश प्राप्त किया था।[1] वाल्मीकि-रामायण के आदि-काण्ड (अध्याय ७०) तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी (४।२।८०) में भी सांकाश्य नगर का उल्लेख है, जो प्राचीन भारत में इसकी प्रसिद्धि का द्योतक है। सरभमिग जातक में संकस्स नगर की दूरी श्रावस्ती से तीस योजन बताई गई है। संकस्स (संकाश्य) नगर की आधुनिक पहचान संकिसा या संकिसा-बसन्तपुर नामक गाँव से की गई है, जो उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में[2], उत्तरी रेलवे के मोटा स्टेशन से करीब ५ मील दूर स्थित है। स्टेशन और गाँव के बीच काली या कालिन्दी नदी पड़ती है। सम्पूर्ण गाँव ४१ फुट ऊँचे टीले पर बसा हुआ है। चारो ओर दूसरे भी टीले हैं, जिनका घेरा मिलाकर करीब दो मील है। संकस्स या संकिस्स के रूप में संकिसा-बसन्तपुर की पहचान सर्वप्रथम जनरल कनिंघम ने की थी।[3] स्मिथ ने इस पहचान को स्वीकार नहीं किया था। उनका कहना था कि यूआन् चुआङ् ने जिस संकाश्य नगर (सेंग्-क-शे) को देखा था, उसे एटा जिले के उत्तर-पूर्व में होना चाहिये।[4] वस्तुतः हमारे लिये समस्या दुहरी जटिल है। एक तो यह कि क्या वर्तमान संकिसा वही "सेंग-क-शे" या "कपिथ" है, जिसे यूआन् चुआङ् ने देखा था और दूसरी यह कि जिस संकाश्य या कपिथ को यूआन् चुआङ् ने देखा था, क्या वह बुद्धकालीन संकस्स नगर ही था। स्थिति और नाम-साम्य के आधार पर और

---

१. थेरगाथा, पृष्ठ ४६ (हिन्दी अनुवाद)।

२. डा० विमलाचरण लाहा ने उसे एटा जिले में लिखा है। ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ३३। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने भी उसे एटा जिले में दिखाया है। बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ ९। यह ठीक नहीं है। आधुनिक संकिसा-बसन्तपुर गाँव वस्तुतः फर्रुखाबाद जिले में ही है।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४२३-४२७।

४. देखिये वाटर्सः औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३८।

सबसे अधिक इस आधार पर कि वर्तमान संकिसा में ही अशोक-स्तम्भ का शीर्ष भाग मिला है, प्रायः सब विद्वान् वर्तमान संकिसा को ही बुद्धकालीन संकस्स नगर मानते हैं। संकस्स नगर में देव-लोक से उतरते हुए भगवान् बुद्ध ने जहाँ अपना पहला दायाँ पैर रक्खा था, वहाँ धम्मपदट्ठकथा के अनुसार "पद चैत्य" की स्थापना की गई थी। कनिघम ने माना है कि यह वही स्थान है जहाँ आज "बिसारी देवी" (बिसह्री देवी) का मन्दिर विद्यमान है।[1]

पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने संकाश्य नगर की यात्रा की थी। फा-ह्यान ने संकिस (कपिथ) नगर को मथुरा से १८ योजन दक्षिण-पूर्व मे देखा था।[2] यूआन् चुआङ् ने उसे "पि-लो-शन्-न" (भिलसर या भिलसन्द, जिला एटा) से २०० 'ली' अर्थात् करीब ३३ या ३४ मील दक्षिण-पूर्व में देखा था।[3] यूआन् चुआङ् ने भगवान् के अवतरण के सम्बन्ध में कुछ पौराणिक कथाओं का भी उल्लेख किया है।[4]

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में संकाश्य नगर की स्थिति उस समय के व्यापारिक मार्गों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। तीन प्रसिद्ध मार्ग यहाँ मिलते थे। सर्व प्रथम संकाश्य नगर उत्तरापथ मार्ग पर अवस्थित था जिसके एक ओर सोरेय्य (सोरों) और दूसरी ओर कण्णकुज्ज (कन्नौज) नगर स्थित थे। इन दोनों के बीच में संकाश्य नगर था। वेरजा में बारहवाँ वर्षावास करने के बाद भगवान् वहाँ से क्रमशः सोरेय्य, संकाश्य और कण्णकुज्ज होते हुए इसी मार्ग के द्वारा प्रयाग-प्रतिष्ठान और फिर वाराणसी गये थे। दूसरी ओर सकाश्य नगर से एक सीधा मार्ग साकेत होता हुआ श्रावस्ती तक जाता था। भगवान् ने संकाश्य में अवतरण के बाद इसी मार्ग के द्वारा श्रावस्ती के लिये गमन किया था। सकाश्य नगर से होकर गुजरने वाला एक तीसरा मार्ग वह था जो सोरेय्य से चलकर

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४२४-४२५।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २४।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३३।

४. वहीं, पृष्ठ ३३५-३३९।

क्रमशः संकाश्य, कण्णकुज्ज, उदुम्बर नगर और अग्गलपुर होता हुआ सहजाति तक जाता था।

संकस्स के अलावा पंचाल देश के आलवी, कण्णकुज्ज और सोरेय्य अन्य प्रसिद्ध नगर थे। आलवी में भगवान् बुद्ध ने अपना सोलहवाँ वर्षावास किया था। आलवी पंचाल देश में ही थी, यह इस बात से विदित होता है कि दीघ-निकाय के आटानाटिय-सुत्त में आलवक को "पंचालचण्डो आलवको" कहा गया है।[1] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आलवी को वर्तमान अर्वलपुर से, जो कानपुर और कन्नौज के बीच में है, मिलाया है।[2] कनिंघम ने उसे उन्नाव जिले के नवल या नेवल से मिलाया था। कुछ विद्वान् उसे इटावा से २७ मील उत्तर-पूर्व अवीत्र से भी मिलाते हैं। आलवी एक राज्य भी था और नगर भी। राज्य के रूप में आलवी पर भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में आलवक नामक यक्ष का अधिकार था, जिसका वर्णन हम सुत्त-निपात के आलवक-सुत्त में पाते हैं। यह एक छोटा सा प्रदेश था जो सम्भवतः गंगा के किनारे स्थित था, क्योंकि आलवक यक्ष को हम भगवान् बुद्ध के प्रति उपर्युक्त सुत्त में यह कहते देखते हैं, "मैं तुम्हें पैरों से पकड़ कर गंगा के पार फेंक दूंगा"। "पादेसु वा गहित्वा पारगंगाय खिप्पेय्य"। यह भी सम्भव है कि 'गंगा-पार" का प्रयोग यहाँ एक मुहावरे के रूप में ही किया गया हो।[3] उस हालत में हमें उसके भौगोलिक अभिप्राय पर जोर नहीं देना पड़ेगा।

डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का सुझाव है कि सम्भवतः आलवी राज्य वह प्रदेश था जिसका यूआन् चुआङ् ने "चङ्-चु" या "चैङ्-चु" राज्य के रूप में वर्णन किया है।[4] यदि डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का यह सुझाव मान लिया जाय तो

---

१. देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ २४२, पद-संकेत २; डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने आलवी को कोसल राज्य में माना है (उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ५ तथा ८)। इसे पालि परम्परा के अनुसार ठीक नहीं माना जा सकता।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ २४२, पद-संकेत २।

३. देखिये द्वितीय परिच्छेद में गङ्गा नदी का विवरण।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९७-१९८।

आलवी प्रदेश को हमें वाराणसी से ३०० 'ली' या करीब ५० मील पूर्व में मानना पड़ेगा, क्योंकि "चङ्-चु" या "चैङ्-चु" प्रदेश की यही स्थिति यूआन् चुआङ् ने अपने-यात्रा विवरण में दी है।[1] पालि परम्परा के अनुसार यह स्थिति निश्चयतः काशी या कोसल राज्य की है, अतः जहाँ तक बुद्धकालीन भारत की भौगोलिक स्थिति का सम्बन्ध है, हम डा० हेमचन्द्र रायचौधरी के सुझाव को नहीं मान सकते। इसी प्रकार कनिंघम और स्मिथ ने जो आलवी राज्य को वर्तमान गाजीपुर प्रदेश से मिलाया है,[2] वह यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण की दृष्टि से तो ठीक है, परन्तु इससे बुद्धकालीन पंचाल जनपद की स्थिति ठीक प्रकट नहीं होती।

"आलवी" का संस्कृत प्रतिरूप महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने "आलम्भिकापुरी" दिया है,[3] परन्तु डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने उसे संस्कृत "अटवी" से व्युत्पन्न मानकर या तो उसके आटविक राज्य होने की सूचना दी है, या उसे आलभिय मानकर जैन ग्रन्थ "उवासगदसाओ" के "आलभिया" के समीप लाने का प्रयत्न किया है।[4] "उवासगदसाओ"[5] में आलभिया नामक नगरी (आलभिया नामं नगरी) का उल्लेख अवश्य है, परन्तु उसके पास यहाँ सखवण नामक उद्यान (संखवणे उज्जाणे) स्थित बताया गया है। अतः इससे आलवी को आलभिया मानने का कोई निश्चित आधार तो नहीं मिलता। अभिधानप्पदीपिका के साक्ष्य

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९।

२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५०२-५०३, ७१५; मिलाइये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९, ३४०।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ २४२, पद-संकेत २।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९८; थॉमस वाटर्स ने भी "आलवी" का संस्कृत प्रतिरूप "आटवी" दिया है। देखिये उनका औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१, १८१।

५. पृष्ठ ३४।

पर हम पाँचवें परिच्छेद में देखेंगे कि आलवी की गणना बुद्धकालीन भारत के २० प्रसिद्ध नगरों में की जाती थी।

पालि साहित्य में आलवी नगरी का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, भगवान् बुद्ध ने अपना सोलहवाँ वर्षावास आलवी में ही किया था। आलवी का एक प्रसिद्ध चैत्य अग्गालव चेतिय नामक था। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि पहले यहाँ यक्षों का निवास था, जिनका निष्कासन कर बुद्ध-काल में यहाँ विहारों का निर्माण किया गया।[1] अट्ठकथाकार के इस कथन से इस बात को बल मिलता है कि आलवी पहले एक जंगली प्रदेश था, और इसलिये उसका संस्कृत प्रतिरूप 'अटवी' मानना ही सम्भवतः अधिक युक्तिसंगत है। महाकवि अश्वघोष ने आलवी मे बुद्ध के प्रचार-कार्य का उल्लेख करते हुए कहा है, "एक अत्यन्त अकुशल अटवी मे बुद्ध ने आटविक यक्ष को और कुमार हस्तक को उपदेश दिया।"[2] इससे आलवी का संस्कृत प्रतिरूप 'अटवी' के रूप में प्रायः निश्चित ही है। विनय-पिटक[3] में हम एक बार भगवान् बुद्ध को कीटागिरि से आलवी और फिर वहाँ से राजगृह जाते देखते है। भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण देते समय हम उनके आलवी जाने और वहाँ से विभिन्न स्थानों को जाने का उल्लेख कर चुके हैं। सुत्त-निपात के आलवक-सुत्त तथा इसी नाम के एक संयुत्त-निकाय के सुत्त का उपदेश भगवान् ने आलवी के अग्गालव चैत्य में दिया था। संयुत्त-निकाय के वंगीस-सुत्त का उपदेश भी भगवान् के द्वारा यहीं दिया गया था। इसी निकाय के निक्खन्त-सुत्त तथा अतिमञ्ञना-सुत्त में हम स्थविर न्यग्रोध कप्प को आलवी के अग्गालव चैत्य में विहार करते देखते हैं। संयुत्त-निकाय के वंगीस-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि स्थविर न्यग्रोध कप्प की मृत्यु आलवी के अग्गालव चैत्य में ही हुई थी। मणिकण्ठ जातक में उल्लेख है कि भगवान् ने आलवी के अग्गालव चेतिय में कुछ समय तक निवास किया था और मणिकण्ठ, ब्रह्मदत्त तथा अट्ठिसेन जातकों का उपदेश यहीं दिया गया था। यह

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २६८।
२. बुद्धचरित २१।१८।
३. पृष्ठ ४७२-४७४ (हिन्दी अनुवाद)।

भी उल्लेखनीय है कि भगवान् की शिष्या भिक्षुणी शैला (सेला) आलवी राष्ट्र की ही निवासिनी थी। वह आलविक राजा की पुत्री थी। इसलिये 'आलविका' भी कहलाती थी।[1] आलवी के समीप एक सिंसपा-वन भी था। अंगुत्तर-निकाय के आलवक-सुत्त में हम भगवान् को यहाँ विहरते देखते हैं।

पाँचवी और सातवी शताब्दी ईसवी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने आलवी की यात्रा की थी। फा-ह्यान ने कौशाम्बी से आठ योजन पूर्व दिशा में उस स्थान को देखा था जहाँ आलवक यक्ष दमित किया गया था।[2] अत: उसके अनुसार आलवी के अग्गालव चैत्य की यही स्थिति माननी पड़ेगी। यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण के आधार पर हम पहले आलवी की सम्भावित स्थिति पर विचार कर ही चुके हैं। बुद्धकालीन परिस्थिति को देखते हुए हम आलवी को महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार कानपुर और कन्नौज के बीच में ही कही देखने के पक्षपाती है।

कण्णकुज्ज (कान्यकुब्ज) पंचाल देश का एक प्रसिद्ध नगर था। कण्णकुज्ज बुद्धकालीन दो प्रसिद्ध मार्गों पर पडता था। एक तो वह उत्तरापथ मार्ग का एक महत्त्वपूर्ण पडाव था, जिसके पूर्व मे प्रयाग-प्रतिष्ठान और पश्चिम में संकाश्य नगर थे। इन दोनो नगरों के बीच मे कण्णकुज्ज स्थित था। दूसरे उस मार्ग पर भी कण्णकुज्ज पडता था जो सोरेय्य (सोरो) से सहजाति तक जाता था और जिसके पडाव सोरेय्य से प्रारम्भ कर क्रमश: संकाश्य, कण्णकुज्ज, उदुम्बर नगर, अग्गालपुर और सहजाति थे। कण्णकुज्ज नगर निश्चयत: आधुनिक कन्नौज ही है। कण्णकुज्ज की यात्रा सातवी शताब्दी ईसवी में यूआन् चुआङ ने की थी और उसने इसे संकस्स से २०० 'ली' या करीब ३३ या ३४ मील उत्तर-पश्चिम दिशा में बताया है।[3] चूँकि आधुनिक कन्नौज संकस्स (संकिसा) से उत्तर-पश्चिम में न होकर दक्षिण-पूर्व में है, अत: उत्तर-पश्चिम के स्थान पर दक्षिण-पूर्व दिशा के

---

१. देखिये थेरीगाथा, पृष्ठ ५३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६२।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया; जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०।

परिवर्तन का सुझाव कनिंघम ने दिया है,[1] जिसे वाटर्स ने भी स्वीकार किया है।[2] वैसे यूआन् चुआङ् की दिशाओं में परिवर्तन करने को हम किसी प्रकार वैध नहीं समझते, परन्तु यहाँ एक विशेष बात यह है कि उसके यात्रा-विवरण के एक संस्करण में 'उत्तर-पश्चिम' पाठ न होकर 'दक्षिण-पूर्व ही है। अतः हम इस पाठ को ठीक मानकर कनिंघम और वाटर्स के दिशा-परिवर्तन सम्बन्धी सुझाव से सहमत हो सकते हैं। कण्णकुज्ज को यूआन् चुआङ् ने "कन्याकुब्ज" ("क-नो-कु-शे") कहकर पुकारा है और उसके यह नाम पड़ने के सम्बन्ध में एक मनोरंजक अनुश्रुति का उल्लेख किया है,[3] जिसके विवरण में जाना हमारे लिये यहाँ आवश्यक न होगा। फा-ह्यान ने भी पाँचवीं शताब्दी ईसवी में कन्नौज की यात्रा की थी और उसने भी इसे कुबडी कन्याओं का नगर कहकर पुकारा है।[4] परन्तु इस सम्बन्धी अनुश्रुति का विस्तार के साथ उल्लेख उसने नहीं किया है। फा-ह्यान ने केवल दो बौद्ध विहार कण्णकुज्ज में देखे थे, परन्तु यूआन् चुआङ् ने इस नगर में १०० बौद्ध विहारों का उल्लेख किया है और कहा है कि यहाँ हीनयान और महायान सम्प्रदायों के १०,००० भिक्षु निवास करते थे। २०० देव-मन्दिर भी यहाँ थे, ऐसा उसने लिखा है।[5]

पालि साहित्य से हमें पता लगता है कि सोरेय्य (सोरों) एक अत्यन्त प्राचीन नगर था। भगवान् बुद्ध से पूर्व अनोमदस्सी बुद्ध और वेस्सभू बुद्ध ने भी सोरेय्य नगर में धर्म-प्रचार किया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सोरेय्य उत्तरापथ मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जो वेरंजा और संकाश्य नगर के बीच में स्थित था। श्रावस्ती से सोरेय्य होते हुए तक्षशिला तक निरन्तर शकटसार्थ चलते रहते थे।[6] पूर्व में सोरेय्य राजगृह और श्रावस्ती से व्यापारिक मार्गों के द्वारा जुड़ा

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४३०।
२. औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०।
३. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०-३४२।
४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २९।
५. उपर्युक्त दो पद-संकेतों के समान।
६. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२६।

हुआ था ही। अहोगंग पर्वत (हरिद्वार) से सोरेय्य तक मार्ग था, जो आगे चलकर क्रमशः संकाश्य, कण्णकुज्ज, उदुम्बर नगर और अग्गलपुर होता हुआ सहजाति तक जाता था।[1] अशोककालीन स्थविर रेवत सोरेय्य में ही निवास करते थे।[2] भगवान् बुद्ध के शिष्य महाकात्यायन को भी हम एक बार सोरेय्य नगर में विहार करते देखते हैं। आधुनिक सोरों ही निश्चित रूप से बुद्धकालीन सोरेय्य है।[3]

वेरंजा उत्तरापथ मार्ग पर पड़ने वाला बुद्ध-काल में एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जो मथुरा और सोरेय्य के बीच स्थित था। पालि तिपिटक या उसकी अट्ठ-कथाओं मे कहीं यह उल्लेख नहीं किया गया है कि यह किस जनपद में था। चूँकि मथुरा सूरसेन जनपद में थी और सोरेय्य (सोरों) पंचाल जनपद में, अतः वेरंजा को इन दोनों जनपदों मे से किसी में रक्खा जा सकता है। सोरों के समीप और श्रावस्ती की ओर का ध्यान रखते हुए उसे पंचाल जनपद में रखने की प्रवृत्ति होती है, परन्तु अंगुत्तर-निकाय के वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में मथुरा से वेरंजा को गये मार्ग को देखकर और मथुरा से उसकी निकटता के कारण उसे सूरसेन जनपद में भी मानने की प्रवणता होती है। पालि परम्परा में यद्यपि कोई स्पष्ट उल्लेख नही

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

२. उपर्युक्त के समान।

३. सोरों (गंगा के किनारे, जिला एटा, उत्तर प्रदेश) के रूप में सोरेय्य की पहचान प्रायः निर्विवाद मानी जाती है। अतः यह एक खेदजनक आश्चर्य ही है कि डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने बिना किसी कारण का उल्लेख किये सोरेय्य को उत्तर प्रदेश में ही नहीं माना है। 'उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास' (पृष्ठ १३) में वे लिखते हैं, "विनय-पिटक (३, ११) में एक अन्य मार्ग का वर्णन है जिससे होकर स्वयं बुद्ध गये थे। यह पश्चिम में वेरंज से आरम्भ होकर सोरेय्य, संकस्स, कण्णकुज्ज, पयाग तित्थ होते हुए बैनारस को जाता था, जिनमें सोरेय्य को छोड़ कर शेष सभी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत हैं।" पता नहीं विद्वान् लेखकों ने ऐसा किस आधार पर लिखा है? डा० लाहा ने सोरों को उत्तर प्रदेश के जिला इटावा में बताया है। 'हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया", पृष्ठ १२८। यह ठीक नहीं है। सोरों जिला इटावा में न होकर एटा में है।

है, परन्तु मूल सर्वास्तिवाद की परम्परा वेरंजा (वैरम्भ्य) को निश्चयतः शूरसेन जनपद से बाहर और सम्भवतः दक्षिण पंचाल मे मानती है। बुद्ध शूरसेन प्रदेश में अपनी चारिकाएँ समाप्त करने के बाद ओतला होते हुए वैरम्भ्य को जाते हुए यहाँ दिखाये गये हैं।[१] इसे एक पूरक साक्ष्य मानकर हम वेरंजा को पंचाल जनपद में मान सकते हैं, जिसके विपरीत पालि के वेरंजा-सम्बन्धी विवरण भी नहीं जाते।

जैसा हम पहले (दूसरे परिच्छेद में) देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध ने अपना बारहवाँ वर्षावास वेरंजा में किया था। वे श्रावस्ती से यहाँ आये थे और वेरंजा में वर्षावास करने के समय के आसपास ही उन्होंने मथुरा की यात्रा की थी, जहाँ से लौटकर वे फिर वेरंजा आ गये थे। अंगुत्तर-निकाय के वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में हम भगवान् को मथुरा और वेरंजा के बीच रास्ते में जाते देखते हैं। यह उनकी इसी यात्रा से सम्बद्ध है। वेरंजा में वर्षावास करने के बाद भगवान् क्रमशः सोरेय्य, सकस्स, कण्णकुज्ज और पयाग पतिट्ठान होते हुए वाराणसी चले गये थे। वाराणसी से वे वैशाली गये थे और वहाँ से श्रावस्ती। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेरंजा श्रावस्ती से मथुरा आनेवाले मार्ग में मथुरा और सोरों के बीच स्थित था। वेरंजा उत्तरापथ मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, यह इस बात से विदित होता है कि हम यहाँ उत्तरापथ के घोड़ों के सौदागरों को वर्षावास में पड़ाव डाले देखते हैं।

मथुरा और सोरों के बीच तथा इन दोनों स्थानों और श्रावस्ती से मार्ग के द्वारा जुड़ा हुआ यह वेरंजा क्या स्थान हो सकता है, इसके सम्बन्ध में अभी पूरी खोज नहीं हुई है। एक महत्वपूर्ण पूरक सूचना जो हमें इस सम्बन्ध मे मूल सर्वास्तिवादी परम्परा में मिलती है और जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, यह है कि भगवान् बुद्ध इस परम्परा के अनुसार मथुरा से ओतला होते हुए वेरंजा (वैरम्भ्य) गये थे। इस प्रकार यह ओतला नामक स्थान हमारे लिये एक नई समस्या भी है और वेरंजा की पहचान कराने में एक सम्भाव्य सहायक साधन भी। परन्तु इस स्थान का भी कोई ठीक पता अभी नहीं लग सका है। मूल सर्वास्तिवाद के विनय-पिटक (गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम,

---

१. गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ १७-२५।

पृष्ठ २५) में वैरम्भ्य का शासक ब्राह्मणराज अग्निदत्त बताया गया है। इसका भी कुछ न कुछ उपयोग इस स्थान की खोज के सम्बन्ध में किया जा सकता है।

भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए हम ऊपर देख चुके है कि वेरंजा नामक स्थान श्रावस्ती से मथुरा आने वाले मार्ग पर मथुरा और सोरेय्य के बीच था। इस प्रकार वेरंजा की दिशा मथुरा से पूर्व या पूर्व-उत्तर ही हो सकती है।[1]

उपर्युक्त बातो को ध्यान में रखते हुए वेरंजा के सम्बन्ध मे खोज-पड़ताल करने पर विदित होता है कि आज जहाँ ग्रांड ट्रंक रोड अलीगढ़ और एटा के बीच सिकन्दरा-राव कस्बे (जिला अलीगढ़) के पास मथुरा और सोरो के बीच के मार्ग को काटती

---

१. परन्तु डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने उसे मथुरा से पश्चिम दिशा में बताया है। लेखक-द्वय का कहना है, "पालि अनुश्रुति में बुद्ध के मथुरा में किये गये उपर्युक्त कार्यों का एकदम उल्लेख नहीं है, यद्यपि कई ग्रन्थों में, जिनमें महावग्ग भी है, मथुरा के पश्चिम वेरंज (वैरम्भ) नामक स्थान में उनके जाने का वर्णन किया गया है।" उत्तर-प्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ १९९। विनय-पिटक के महावग्ग में यह तो कहीं उल्लेख नहीं है कि वेरंज या वेरंजा मथुरा के पश्चिम में था, यह तो लेखकों की अपनी व्याख्या है। श्रावस्ती और मथुरा तथा मथुरा और सोरेय्य के बीच स्थित वेरंजा मथुरा से पश्चिम दिशा में किस प्रकार होगा? वेरंजा या वैरम्भ (गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स में वैरम्भ्य पाठ है) का पंचाल (दक्षिण पंचाल) जनपद में स्थित होना सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार स्वयं इन लेखक-द्वय ने स्वीकार किया है (उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ७८)। फिर वेरंजा को मथुरा से पश्चिम दिशा में किस प्रकार माना जा सकता है? स्वयं गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स् (जिल्द तीसरी, भाग प्रथम) में बुद्ध मथुरा से क्रमशः ओतला, वैरम्भ्य, अयोध्या और साकेत होते हुए श्रावस्ती पहुँचते हैं। अतः वैरम्भ्य का मथुरा से पश्चिम में होने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। वस्तुतः इस स्थान को मथुरा के पूर्व या पूर्वोत्तर दिशा में ही होना चाहिए, वहाँ पड़ने वाले उत्तरापथ मार्ग पर या उसके आसपास।

है, वहीं सम्भवत: कहीं वेरंजा था। इस स्थिति से पालि-विवरणों की सब शर्तें पूरी हो जाती हैं।

समन्तपासादिका[1] में कहा गया है कि वेरंजा में वर्षावास करते समय भगवान् ने कुछ समय उसके समीप नलेरुपुचिमन्द नामक चैत्य में बिताया था। यह चैत्य एक पुचिमन्द (नीम) के पेड़ के नीचे बना था और नलेरु नामक यक्ष को समर्पित था। इसलिये इसका नाम 'नलेरुपुचिमन्द' पड़ा था। इस चैत्य से लगते हुए ही उत्तर-कुरु की ओर मार्ग जाता था, जिससे तात्पर्य यहाँ उत्तरापथ मार्ग से ही हो सकता है। इसी मार्ग से उत्तरापथ के घोड़ों के व्यापारी यहाँ आये होंगे, जो उस समय वर्षाकाल में यहाँ पड़ाव डाले हुए थे। इस चैत्य के विवरण से भी यह स्पष्ट होता है कि वेरंजा उत्तरापथ मार्ग पर मथुरा और सोरों के बीच स्थित था। अत: ऐसा स्थान आधुनिक सिकन्दरा राव कस्बे (जिला अलीगढ़) के आसपास ग्रांड ट्रंक रोड से लगता हुआ ही कहीं हो सकता है। यह भी सम्भव है कि शाहगढ़ का खेड़ा ही प्राचीन वेरंजा हो। यहाँ गुप्तकालीम मूर्तियाँ आदि भी मिली हैं और यह एक प्राचीन स्थान भी है।

"धर्मदूत" के फर्वरी, १९५९, के अंक में श्री बनारसीदास 'करुणाकर' ने अतरंजी के खेड़े को वेरंजा बताने का प्रयत्न किया है। यह खेड़ा काली नदी के तट पर जिला एटा में ही है और मथुरा और सोरों के बीच होने की शर्त को पूरा करता है। ओतला की पूरक सूचना के सम्बन्ध में लेखक ने कोई विचार नहीं किया है। वेरंजा को उत्तरापथ मार्ग पर पड़ना चाहिए। अतरंजी का खेड़ा इस पर नहीं पड़ सकता, इसकी लेखक को अनुभूति रही है। परन्तु इसको उसने कम महत्व देने का प्रयत्न किया है। अभी इस सम्बन्ध में आगे और खोज की आवश्यकना है।

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १०८, १८४; मिलाइये अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७२, १९७ भी। गिलगित मेनुस्क्रिप्टस्, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ २५ में 'नलेरुपुचिमन्द चैत्य को 'नडेरपिचुमन्द' कहकर पुकारा गया है।

चेति (चेदि) या चेतिय (चैद्य) जनपद वंस जनपद के दक्षिण में, यमुना नदी के पास, उसकी दक्षिण दिशा में, स्थित प्रदेश था।[१] इसके पूर्व में काशी जनपद, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत, पश्चिम में अवन्ती और उत्तर-पश्चिम में मच्छ (मत्स्य) और सूरसेन जनपद थे। चेदि जनपद का सबसे समीपी पड़ोसी वंस (वत्स) जनपद ही था। इसीलिये सम्भवतः दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में वंस और चेदि का साथ-साथ मिलाकर द्वन्द्व समास के रूप में वर्णन किया गया है... "चेतिवंसेसु"। चेदि जनपद का विस्तार साधारणतः आधुनिक बुन्देलखण्ड और उसके आसपास के प्रदेश के बराबर माना जा सकता है। चेतिय जातक में चेदि देश के राजाओं की वंशावली दी गई है जिसमें महासम्मत और मन्धाता (मान्धाता) राजाओं को उनके आदि पूर्वज बताया गया है। इसी जातक में अन्तिम चेदि नरेश उपचर या अपचर के पाँच पुत्रों द्वारा प्राचीन भारत के पाँच नगरों के बसाये जाने का उल्लेख है। जिन पाँच नगरों को उपचर या अपचर के इन पाँच पुत्रों ने बसाया, उनके नाम हैं हत्थिपुर,[२] अस्सपुर,[३] सीहपुर,[४] उत्तरपंचाल[५] और दद्दरपुर।[६] वेदब्भ जातक से हमें पता लगता है कि चेदि देश से काशी जनपद को जाने वाला मार्ग वन में होकर जाता था और लुटेरों से भरा था। चेतिय जातक से ही हमें पता

---

१. डा० मललसेकर ने चेति जनपद को यमुना के समीप, उसके पूर्व की ओर स्थित बताया है (...'lay near the यमुना, to the east' डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ९११)। पूर्व की ओर कहना ठीक नहीं है। वस्तुतः यमुना के पूर्व में न होकर उसके दक्षिण में ही चेति जनपद था। यमुना के पूर्व में तो वत्स जनपद था। उसके नीचे चेति था।

२. या हत्थिनीपुर हस्तिनापुर, कुरु राष्ट्र में।

३. अंग जनपद में।

४. लाल राष्ट्र में, उत्तरी पंजाब में भी।

५. उत्तर पंचाल की राजधानी, जिसे महाभारत के अहिच्छत्र से मिलाया गया है।

६. हिमवन्त प्रदेश में (सम्भवतः दर्दिस्तान में। देखिए पीछे द्वितीय परिच्छेद में उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन)।

चलता है कि चेतिय जनपद की राजधानी सोत्थिवती नामक नगरी थी। इस नगरी को नन्दोलाल दे ने महाभारत (३।२०।५०; १४।८३।२) की नगरी शुक्तिमती या शुक्तिसाह्वय से मिलाया है।[1] पार्जिटर ने उसकी स्थिति आधुनिक बाँदा के समीप बताई थी, जिससे डा० हेमचन्द्र रायचौधरी भी सहमत हैं।[2] परन्तु पालि साक्ष्यों का ध्यान रखते हुए हमें यह पहचान ठीक नहीं जान पड़ती। इसका कारण यह है कि चेतिय जातक में स्पष्ट रूप से सोत्थिवती नगर से पूर्व दिशा मे हत्थिपुर (हस्तिनापुर) को स्थित बताया गया है।[3] इसका अर्थ यह है कि पालि विवरण के अनुसार सोत्थिवती को हस्तिनापुर के पश्चिम में होना चाहिये। अतः बाँदा के पास उसे नहीं माना जा सकता। यह सम्भव है कि हस्तिनापुर के पश्चिम में चेतिय (चेत) लोगों की कोई अन्य बस्ती रही हो और उसी की राजधानी सोत्थिवती नगरी हो। हर हालत में हमें पालि के सोत्थिवती नगर को हस्तिनापुर के पश्चिम में ही ढूंढ़ने का प्रयत्न करना होगा।

सहजाति या सहजातिय चेदि राज्य का एक दूसरा प्रसिद्ध नगर था। अंगुत्तर-निकाय[4] में उसे स्पष्टतः चेदि राष्ट्र का निगम बताया गया है। सहजाति को आधुनिक भीटा के भग्नावशेषों से मिलाया गया है, जो इलाहाबाद से करीब ८ या ९ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। ये भग्नावशेष ही प्राचीन सहजाति नगर है, यह इस बात से विदित होता है कि यहाँ करीब तीसरी शताब्दी ईसवी-पूर्व की एक मुद्रा मिली है, जिस पर अंकित है "सहजातिये निगमस।" सहजाति बुद्ध-काल में एक महत्वपूर्ण नगर था, जो स्थलीय और जलीय दोनों व्यापारिक मार्गों पर स्थित था। एक स्थलीय मार्ग उसे सोरों (सोरेय्य) से मिलाता था। इसी मार्ग पर चलते हुए स्थविर रेवत सोरेय्य से सहजाति गये थे। बीच मे जो

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ १९६; मिलाइये रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १२९।

२. देखिये उनकी पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १२९; मिलाइये उनकी स्टडीज इन इण्डियन एण्टिक्विटीज, पृष्ठ ११४।

३. जातक, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२० (हिन्दी अनुवाद)।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३५५।

स्थान पड़े थे. वे सोरेय्य से प्रारम्भ कर इस प्रकार हैं, सोरेय्य, संकास्स, कण्ण-कुज्ज, उदुम्बरपुर, अग्गलपुर और सहजाति[1]। वेदब्भ जातक में चेदि देश से काशी जनपद को जाने वाले जिस मार्ग का उल्लेख है, वह सम्भवत: सहजाति होकर ही जाता था। सहजाति कौशाम्बी से, जो उससे थोडी दूर पर ही स्थित थी, स्थल मार्ग से जुड़ा हुआ था और इस प्रकार उसका सम्बन्ध तत्कालीन भारत के प्राय: सभी महा-नगरों से था। पालि विवरणों से ज्ञात होता है कि बुद्ध-काल में सहजाति नगर गंगा-यमुना के संगम के समीप स्थित था। गंगा में चम्पा से लेकर यहाँ तक नावें आती थीं। वैशालीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षु नावों मे बैठकर ही स्थविर रैवत से मिलने सहजाति आये थे।[2] बाद के काल में चम्पा तक ही नही, तामलित्ति (ताम्रलिप्ति) तक सहजाति से गंगा में होकर नावे जाती थी और इस प्रकार उसके व्यापारिक सम्बन्धों को सुवर्णद्वीप (दक्षिणी बर्मा) तक पूर्व में जोड़ती थी। अंगुत्तर-निकाय[3] के अनुसार भगवान् बुद्ध सहजाति नगर गये थे और वहाँ उन्होंने चेतिय लोगों को उपदेश दिया था। भगवान् बुद्ध के शिष्य महाचुन्द भी चेदि देश के सहजाति नगर में गये थे, ऐसा हमें अंगुत्तर-निकाय[4] से स्पष्टत: विदित होता है। "आयस्मा महाचुन्दो चेतिसु विहरति,सहजातियं"।

संयुत्त-निकाय के गवम्पति-सुत्त में हम स्थविर गवाम्पति (गवम्पति) तथा कुछ अन्य भिक्षुओं को चेदि या चेत राष्ट्र के (चेतेसु) सहचनिक या सहंचनिका नामक नगर में निवास करते देखते है।[5] इस सहंचनिक या सहचनिका को मलल-सेकर ने सहजाति का ही विकृत या गलत रूप माना है।[6] परन्तु इसे हम एक अलग नगर भी मान सकते है।

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५७; महावंश ४।२७ (हिन्दी अनुवाद)।

३. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४१, १५७।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३५५; मिलाइये जिल्द पाँचवीं,पृष्ठ ४१,१५७,१६१भी।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८१३।

६. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०८०।

बालकलोणकार गाम कौशाम्बी के समीप एक गाँव था। यह कौशाम्बी और पाचीनवंस दाय के बीच में था। कौशाम्बी तो वंस राज्य में थी ही, पाचीनवंस दाय को निश्चित रूप से चेति राष्ट्र में कहा गया है। बालकलोणकार गाम के बारे में निश्चित सूचना नहीं मिलती कि वह वंस और चेदि में से किस राष्ट्र में था। हम उसे इन दोनों राज्यों की सीमा पर मान सकते हैं। भगवान् कौशाम्बी के कुछ भिक्षुओं की कलहप्रियता से खिन्न होकर जब वहाँ से श्रावस्ती के लिये चल दिये तो प्रथम स्थान जहाँ पर वे टिके वह बालकलोणकार गाम ही था। यहाँ से वे पाचीनवंस दाय में चले गये। मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त से हमें पता लगता है कि उपालि गहपति, जो निगण्ठ नाटपुत्त का एक प्रसिद्ध शिष्य था, बालकलोणकार गाम का ही निवासी था। वह, उपर्युक्त सुत्त के अनुसार, नालन्दा में, जहाँ निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) उस समय ठहरे हुए थे, उनके दर्शनार्थ गया था।

पाचीन वंस (मिग) दाय चेतिय राज्य में एक मृगोपवन था।[1] यह बालकलोणकार गाम और पारिलेय्यक वन के बीच स्थित था। बुद्धत्व-प्राप्ति के नवें वर्ष में, जब भगवान् बुद्ध कौशाम्बी के कलहप्रिय भिक्षुओं से ऊबकर श्रावस्ती की ओर जा रहे थे तो मार्ग में कौशाम्बी के बाद बालकलोणकार गाम मे ठहरते हुए यहाँ आये थे। यहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध, नन्दिय और किम्बिल नामक भिक्षु पहले से ही विहार कर रहे थे। भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया और कुछ दिन ठहर कर पारिलेय्यक वन की ओर चल दिये, जहाँ दसवाँ वर्षावास करने के उपरान्त क्रमशः चारिका करते हुए हम उन्हें श्रावस्ती पहुँचते देखते हैं।[2] अंगुत्तर-निकाय[3] में भी आयुष्मान् अनुरुद्ध के चेतिय देश के पाचीनवंस (मिग) दाय में विहार का उल्लेख है।

कौशाम्बी के समीप पारिलेय्यक नगर के पास पारिलेय्यक नामक वन था, जहाँ भगवान् कौशाम्बी से क्रमशः बालकलोणकार गाम और पाचीनवंसदाय में होते

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ २२८।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३१-३३४।

३. जिल्द चौथी, पृष्ठ २२८।

हुए पहुँचे थे। इस वन के रक्षित वनखण्ड मे भद्दसाल नामक वृक्ष के नीचे भगवान् ठहरे थे। यहीं उन्होंने अपना दसवाँ वर्षावास किया। तदनन्तर भगवान् श्रावस्ती चले गये।[1]

पारिलेय्यक नगर कौशाम्बी के समीप था। पारिलेय्यक नामक वन भी इसके समीप था, जिसके रक्षित वनखण्ड में भगवान् ने अपना दसवाँ वर्षावास किया था। भगवान् कौशाम्बी से चलकर बालकलोणकार गाम और पाचीनवंस (मिग) दाय में होते हुए पारिलेय्यक नगर और उसके समीप पारिलेय्यक वन मे पहुँचे थे। चूँकि पाचीनवंसदाय को अंगुत्तर-निकाय में निश्चयतः चेतिय (चेति) राज्य में बताया गया है, इसलिये पारिलेय्यक वन और पारिलेय्यक नगर को भी चेति राष्ट्र में मानना ठीक जान पड़ता है।

भद्दवती या भद्दवतिका एक व्यापारिक कस्बा था जो कौशाम्बी के समीप स्थित था। परन्तु उसे चेतिय राज्य में सम्मिलित बताया गया है। सामावती का पिता भद्दवतिय सेट्ठि यही रहता था। सामावती से कौशाम्बी-नरेश उदयन ने विवाह किया था। भगवान् बुद्ध एक बार भद्दवती गये थे जहाँ के "अम्बतित्थ" नामक स्थान में जाने से ग्वालों ने उन्हे रोका था, क्योंकि वहाँ एक भयंकर नाग रहता था। स्थविर स्वागत ने इस नाग को अपने वश में कर लिया था। सुरापान जातक में वर्णन है कि काफी दिन भद्दवती में रहकर भगवान् कौशाम्बी चले गये थे जहाँ उन्होंने सुरापान-निषेध का उपदेश दिया था। भद्दवती से कौशाम्बी को एक सड़क जाती थी और दोनों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध थे।[2] यह सम्भव है कि वर्तमान भाँदक नामक गाँव, जो मध्य-प्रदेश के जिला चाँदा में है, बुद्धकालीन भद्दवती हो। अनुश्रुति इसे भद्रावती से संयुक्त मानती है, जिससे हम पालि की भद्दवती को मिला सकते है।

चालिका नामक एक गाँव चेति (चेतिय) देश में था, जिसके समीप ही चालिक या चालिय नामक पर्वत था जहाँ भगवान् ने अपने तेरहवें, अठारहवें और उन्नीसवें वर्षावास किये। चालिका के समीप होकर ही किमिकाला नदी बहती थी। चालिका

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३३।

२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १८७।

गाँव के पास एक चलपङ्क (दलदल) था, जिसके कारण इस गाँव का नाम "चालिका" पड़ा था।

चालिका से लगा हुआ ही एक दूसरा गाँव जन्तुगाम था, जो किमिकाला नदी के समीप ही था। इसी गाँव मे भिक्षाटन के लिये जाते समय आयुष्मान् मेघिय की इच्छा किमिकाला नदी के किनारे स्थित आम्रवन में ध्यान करने की हुई थी। मनोरथपूरणी[1] में कहा गया है कि जन्तुगाम पाचीनवंस दाय में था। इसमें कोई बिरोध नहीं है, क्योकि पाचीन वंसदाय भी चेति राष्ट्र में ही था। इससे हमें पाचीन वंसदाय, चालिय पर्वत, चालिका गाँव, जन्तुगाम और किमिकाला नदी, इन सब के कुछ-कुछ दूरी पर चेतिय राष्ट्र में ही स्थित होने की उपयोगी सूचना मिलती है।

किमिकाला (किपिल्लिका) नदी चेतिय देश में होकर बहती थी। चालिय (चालिक) पर्वत के यह समीप थी। किमिकाला नदी के तट पर वह आम्रवन था, जहाँ आयुष्मान् मेघिय भगवान् की इच्छा के विरुद्ध ध्यान करने के लिये चले गये थे और बाद में बुरे संकल्प उठने के कारण लौट आये थे।[2] जन्तुगाम भी किमिकाला नदी के पास ही था। उदान-अट्ठकथा में कहा गया है कि इस नदी में काले रंग के कीड़े (कालकिमि) बहुलता से पाये जाते थे, इसलिये इसका नाम "कालकिमीनं बाहुलताय" अर्थात् काले कृमियों की बहुलता के कारण "किमिकाला" पड़ा था।[3]

चालिक (चालिय) पब्बत, चेतिय देश में, चालिका नामक गाँव के पास स्थित था, जहाँ भगवान् ने अपने तेरहवे, अठारहवे और उन्नीसवें वर्षावास किये।[4]

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १६३।

२. उदान, पृष्ठ ४७-४९ (हिन्दी अनुवाद)।

३. देखिए मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६०४।

४. डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने चालिय गिरि को कपिलवस्तु के समीप बताया है, जिसे समझना कठिन है। वे कहते हैं "बुद्ध ने... तेरहवीं वर्षा कपिलवस्तु के निकट चालिय गिरि पर बिताई।" उत्तर-प्रदेश में

मनोरथपूरणी[1] में कहा गया है कि यह पर्वत सफेद रंग का था और अमावस्या की काली रात को चलता जैसा दिखाई पड़ता था। इसीलिये इसका नाम "चालिक," या "चालिय" पड़ा था।

सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका)[2] में कहा गया है कि चेति जनपद में 'चेति' या 'चेतिय' नाम धारण करने वाले राजाओं ने शासन किया था, इसलिये उसका यह नाम (चेति) पड़ा। ऋग्वेद (८।५।३७-३९) में चेदि जनों और उनके राजा काशु चैद्य का उल्लेख है। उन्हीं के प्रदेश से हम पालि के चेति या चेतिय जनपद को साधारणतः अभिन्न मान सकते हैं। यह आधुनिक बुन्देलखण्ड ही हो सकता है।

वेस्सन्तर (महावेस्सन्तर) जातक में चेति या चेत जनपद के विषय में एक ऐसी बात कही गई है जिसने कई विद्वानों को काफी भ्रम में डाल दिया है। इस जातक के अनुसार कुमार वेस्सन्तर सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर से हिमालय में निर्वासन के लिये जाते हुए चेत रट्ठ में होकर गुजरा था और यह राष्ट्र जेतुत्तर से ३० योजन की दूरी पर स्थित था। इसके आधार पर प्रो० रायस डेविड्स् ने यह निष्कर्ष निकाला था कि इस चेत रट्ठ या चेति राज्य को पहाड़ों में होना चाहिये और उन्होंने इसे वर्तमान नेपाल से मिलाने का प्रयत्न भी किया। इस प्रकार प्रो० रायस डेविड्स् को दो चेति राज्य मानने पड़े। एक तो वही यमुना के पास का, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके है और दूसरा यह पर्वत प्रदेश का। इस पर्वत प्रदेश वाले चेति राज्य को उन्होंने चेतिय लोगों का पुराना निवास और यमुना के पास के चेतिय राज्य को उनका उसके बाद का निवास माना।[3] डा० मललसेकर ने रायस डेविड्स् की

बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ७९। इसी प्रकार महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'महामानव बुद्ध' (पृष्ठ १०) में चालिय पर्वत को बिहार में दिखा दिया है, जो भी उतना ही समझने में कठिन है। पालि परम्परा के स्पष्ट साक्ष्य पर यह पर्वत चेतिय जनपद में था।

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९३।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ १३५।

३. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १९ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)

इन सब मान्यताओं से सहमति दिखाई है और साथ ही सोत्थिवती नगर को प्राचीन चेतिय जनपद की राजधानी निश्चित किया है।[1] परन्तु ये सब मान्यताएँ अप्रामाणिक हैं और प्रथम गम्भीर परीक्षण को भी सहन नहीं करतीं। चित्तौड़ के रूप में जेतुत्तर की पहचान प्रायः निश्चित हो चुकी है। यदि यह ठीक है तो इस स्थान से ३० योजन दूर चेति राज्य को वेस्सन्तर जातक के अनुसार होना चाहिये।[2] उस हालत में हम उसे नेपाल में किस प्रकार स्थित मान सकते हैं? फिर इस तथाकथित प्राचीन चेति राज्य (नेपाल) की राजधानी मललसेकर ने सोत्थिवती नगर को माना है। परन्तु चेतिय जातक में हम स्पष्टतः यह उल्लेख पाते हैं कि सोत्थिवती से पूर्व मे हत्थिपुर (हस्तिनापुर) था।[3] अतः सोत्थिवती को हस्तिनापुर से पश्चिम में होना चाहिये। सोत्थिवती राजधानी वाले चेतिय जनपद को नेपाल मानकर इसकी क्या संगति होगी? अतः रायस डेविड्स् द्वारा प्रतिपादित और मललसेकर द्वारा समर्थित यह मत हमें मान्य नहीं हो सकता।

उनके प्रतिकूल हमें सोत्थिवती नगर के रूप में राजधानी वाले जनपद को तो, जिसका चेतिय जातक में उल्लेख है, हस्तिनापुर के पश्चिम में ही कहीं मानना पड़ेगा। सम्भवतः वेस्सन्तर जातक का चेत रट्ठ भी यहीं था, जिसका मातुल नामक नगर जेतुत्तर से ३० योजन दूर था। इस प्रकार चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के सम्मिलित साक्ष्य से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि हस्तिनापुर के पश्चिम में चेति या चेत लोगों का एक अन्य जनपद था, जिसकी राजधानी सोत्थिवती नामक नगरी जेतुत्तर (चित्तौड़) से ३० योजन दूर थी। इस जनपद को हम प्राचीन न मान कर बाद का ही मानेंगे। इसका कारण यह है कि इसका उल्लेख केवल जातक में हुआ है, जब कि वत्स से लगे हुए का प्रथम चार निकायों में। ऊपर उद्धृत "चेतिवंसेसु" से यह स्पष्ट ही है। चेत या चेतिय लोगों का पश्चिम भारत में स्थित यह बाद का जनपद ही

---

१. देखिये डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ९११।

२. जातक, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५५९ (हिन्दी अनुवाद); जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ५१४ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)

३. जातक, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२० (हिन्दी अनुवाद)।

है जिसके सम्बन्ध में जातक में कहा गया है कि यह एक ऋद्ध और स्फीत जनपद था, जहाँ मांस बहुलता से मिलता था और सुरा और ओदन भी सुलभ थे। "इद्धं फीतं जनपदं बहुमांसं सुरोदनं।"

चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के आधार पर ही आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने चेतिय राज्य के सम्बन्ध में एक ऐसी बात कही है जिससे अधिक अवैज्ञानिक और तथ्यों से विरहित बात बुद्धकालीन भारत के सम्बन्ध अब तक नहीं कही गई है। उन्होंने शिवियों के राज्य के साथ-साथ (जिसके सम्बन्ध में उनका कहना अंशतः ठीक हो सकता है) चेतियों के राज्य के सम्बन्ध में भी यह कहा है, "बुद्ध के समय में शिवियों और चेतियों के नाम विद्यमान थे, मगर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि बुद्ध भगवान् उनके राज्यों में गये हों... बुद्ध भगवान् की जीवनी के साथ इन राज्यों का किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था।"[१] चेतिय राष्ट्र का जो भौगोलिक विवरण पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर हम दे चुके हैं, उससे तो सब प्रकार यही सिद्ध होता है कि न केवल भगवान् बुद्ध और उनके अनेक शिष्य चेतिय लोगों के प्रदेश में गये ही थे और उनके सहजाति, भद्दवती और पाचीनवंस दाय जैसे कई नगरों और स्थानों में उन्होंने उपदेश ही दिये थे, बल्कि बुद्ध के जीवन-काल में चेतिय जनपद बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र भी हो गया था। यदि भगवान् बुद्ध की जीवनी के साथ चेतिय लोगों के प्रदेश का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है तो अंगुत्तर-निकाय के उन सुत्तों का क्या होगा जिनमें स्पष्टतः भगवान् चेतिय लोगों को उनके नगर सहजाति में उपदेश करते दिखाये गये हैं। "आयस्मा महाचुन्दो चेतिसु विहरति सहजातियं।" अंगुत्तर-निकाय के इस वाक्य का क्या होगा? इसी प्रकार पाचीनवंस दाय और भद्दवती के अम्बतित्थ में बुद्ध और उनके शिष्यों के विहार का क्या होगा? दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त का क्या होगा? अतः सब प्रकार से अयुक्तियुक्त होने के कारण आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी का चेतिय लोगों के बारे में यह सामान्य

१. भगवान् बुद्ध, पृष्ठ ४० (हिन्दी अनुवाद)।

कथन हमें मान्य नहीं कि भगवान् बुद्ध उनके प्रदेश में नहीं गये थे और न भगवान् की जीवनी से उनके राज्य का कोई सम्बन्ध था। चेतियों के जनपद को हम मुख्यतः वंस जनपद से लगा हुआ आधुनिक बुन्देलखण्ड के आसपास का प्रदेश मानते हैं। चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के 'चेत' रट्ठ को हमें हस्तिनापुर के पश्चिम में स्थित मानना पड़ेगा। इनमें से पहला चेति या चेतिय ही वस्तुतः प्राचीन चेदि राष्ट्र है जो यमुना के समीप स्थित था और सोलह महाजनपदों की गणना में आने वाला बुद्धकालीन चेतिय जनपद भी यही है। प्रथम चार निकायों में इसी का वर्णन हुआ है। दूसरे चेत रट्ठ को, जिसका उल्लेख केवल उपर्युक्त दो जातकों में हुआ है, उससे मिलाना या उसकी भौगोलिक स्थिति का निश्चय करना अभी एक समस्या ही माना जा सकता है। अतः चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के अनिश्चित चेत रट्ठ को ही सब कुछ मान कर कम से कम प्रकृत चेतिय जनपद को हम अपनी दृष्टि से सर्वथा ओझल तो नहीं कर सकते, जैसा आचार्य कोसम्बी ने खेदजनक रूप से किया है

वंस जनपद, जैसा हम पहले देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक राज-तंत्र था। राज्य के रूप में वंस जनपद की सीमाओं, विस्तार और मुख्य नगरों आदि का विवरण हम पहले दे चुके हैं। अंगुत्तर-निकाय[1] में वंस लोगों की भूमि को सप्त रत्नों से युक्त, समृद्ध और धन-धान्य से पूर्ण बताया गया है। वंस लोगों का भग्ग लोगों से गहरा सम्बन्ध था और भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण से पूर्व भग्ग जनपद के, जो एक गण राज्य था, वंस राज्य में सम्मिलित होने या उसकी अधीनता में आने के लक्षण मिलते हैं, यह हम भग्ग गणतंत्र के विवेचन में देख चुके है। भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अन्य सब बातो का उल्लेख हम वंस राज्य के विवरण के प्रसंग में कर चुके है।

मच्छ (मत्स्य) जनपद कुरु राष्ट्र के दक्षिण और सूरसेन के पश्चिम मे स्थित था। मच्छ के पूर्व में यमुना नदी थी जो उसे दक्षिण पंचाल से विभक्त करती थी। दक्षिण में उसकी सीमा सम्भवतः चम्बल नदी तक थी। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में इस जनपद का विशेष महत्व दिखाई

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२, २५६, २६०।

नहीं पड़ता। दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त मे मच्छ जनपद का प्रयोग सूरसेन जनपद के साथ मिलाकर किया गया है। "मच्छसूरसेनेसु"। जातक[1] मे मच्छ जनपद का उल्लेख पंचाल, सूरसेन,मद्द और केकय के साथ किया गया है। विधुर पंडित जातक मे उल्लेख है कि मच्छ लोगों के समक्ष कुरु राजा धनंजय और पुण्णक यक्ष के बीच द्यूत का खेल हुआ था। इससे डा० लाहा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मच्छ लोगों ने कुरु और सूरसेन जनपदों के साथ गठबन्धन कर लिया था।[2] इसके लिये इस कहानी में तो कोई विशेष अवकाश मिलता नहीं। वैदिक साहित्य और उसकी परम्परा के ग्रंथों में मत्स्य जनपद का उल्लेख है।[3] मच्छ जनपद मे हम आधुनिक अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली राज्यों को, जो अब राजस्थान में अन्तर्भुक्त हैं, सम्मिलित मान सकते हैं।[4] पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में मच्छ जनपद के किसी नगर का विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है।

सूरसेन जनपद मच्छ जनपद के दक्षिण-पश्चिम और कुरु राष्ट्र के दक्षिण में स्थित था। उसके पूर्व मे पंचाल जनपद था और दक्षिण मे अवन्ती महाजनपद का दसण्ण (दशार्ण) जनपद। जातक[5] में मच्छ, मद्द और केकय लोगों के साथ सूरसेन जनपद का नामोल्लेख किया गया है। दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में उसका उल्लेख मच्छ जनपद के साथ (मच्छसूरसेनेसु) किया गया है। पुराणों के अनुसार शूरसेन जनपद का यह नाम शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ा

---

१. जिल्द छठी, पृष्ठ २८०।

२. इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ९९।

३. जिसके विवरण के लिये देखिये वैदिक इण्डेक्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२१-१२२।

४. मिलाइये नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी, पृष्ठ १२८; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ३८७; रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ६६-६७।

५. जिल्द छठी, पृष्ठ २८०।

था। ऐसा कोई उल्लेख हमें पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में तो नहीं मिलता, परन्तु दीपवंस[1] में यह अवश्य कहा गया है कि राजा साधिन (स्वाधीन) के वंशजों ने मथुरा नगरी में शासन किया। सर्वास्तिवादी परम्परा में शूरसेन जनपद के आदिम राजा का नाम महासम्मत बताया गया है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा मज्झिम-निकाय के माधुरिय-सुत्तन्त से प्रकट होता है, सूरसेन जनपद का राजा माथुर अवन्तिपुत्र था, जो इसी निकाय की अट्ठकथा के अनुसार अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत का दौहित्र था[2]। ग्रीक लोगों ने सूरसेन जनपद का नाम "सोरसेनोय" और उसकी राजधानी का नाम "मेथोरा" दिया है। सूरसेन जनपद को हम आधुनिक व्रज-मण्डल से मिला सकते हैं, जिसमें परम्परा से मथुरा के चारों ओर का चौरासी कोस का प्रदेश सम्मिलित माना जाता है। "व्रज चौरासी कोस में मथुरा मण्डल माँह।" सूर-सारावली में भी कहा गया है "चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बल मोहन।"

सूरसेन जनपद और विशेषतः उसकी राजधानी मथुरा (मधुरा) का बौद्ध धर्म के साथ उसके आविर्भाव-काल से लेकर कई शताब्दियों तक, विशेषतः अशोक के काल से लेकर कुषाण-युग तक, महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। मूल सर्वास्तिवादियों का तो यह एक प्रधान केन्द्र ही हो गया और मूर्तिकला के सम्बन्ध में मथुरा का एक युग ही प्रसिद्ध है। यहाँ हम अपने विषय के अनुसार भगवान् बुद्ध के जीवन-काल तक की

---

१. पृष्ठ २७।

२. ललित-विस्तर, पृष्ठ २१-२२ (लेफमेन का संस्करण) से जान पड़ता है कि भगवान् बुद्ध के आविर्भाव के समय या उससे कुछ पूर्व मथुरा में कंस-कुल का शूरसेनों का राजा सुबाहु राज्य करता था। पौराणिक वर्णनों से इसका मेल नहीं खाता। पुराणों में राजा सुबाहु को शूरसेन का भाई और शत्रुघ्न का पुत्र बताया गया है। अतः ललितविस्तर का कंसकुल का शूरसेनों का राजा सुबाहु वह नहीं हो सकता। सम्भव है यह कोई अन्य बुद्ध-पूर्वकालीन शूरसेन जनपद का राजा रहा हो। ऐतिहासिक रूप से हमें पालि विवरण को ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

परिस्थितियों तक ही सीमित रहकर पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर सूरसेन जनपद का कुछ भौगोलिक विवरण देंगे।

सर्व प्रथम उसकी राजधानी मथुरा (मधुरा—पैशाची रूप) या उत्तर मधुरा[1] (उत्तर मथुरा) को लेते हैं। यहाँ सबसे पहली बात यह है कि जैसे हम "रमणीय है राजगृह"!, "रमणीय है वैशाली"!, "रमणीय है अम्बाटक वन"! आदि वाणियाँ भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के मुख से कई अन्य स्थानों के सम्बन्ध में सुनते है, वैसी उदार वाणी मथुरा या उसके "गुन्दावन" के सम्बन्ध मे सुनाई नही पड़ती। स्वयं भगवान् बुद्ध मथुरा आये थे,[2] परन्तु उससे प्रभावित नही हुए। उन्होंने मथुरा के पाँच दोष गिनाते हुए अंगुत्तर-निकाय के पंचक-निपात में कहा है, "पञ्चिमे भिक्खवे आदीनवा मधुरायं। कतमे पञ्च? विसमा, बहुरजा, चण्डसुनखा, वालयक्खा, दुल्लभपिण्डा। इमे खो भिक्खवे पञ्च आदीनवा मधुरायं ति।"[3] इसका अर्थ है,

---

१. उत्तर मधुरा नाम दक्षिणापथ की मधुरा (जिसे आजकल मदूरा भी कहा जाता है) से पृथक् करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। घट जातक में तथा विमानवत्थु की अट्ठकथा में 'उत्तर मधुरा' का उल्लेख है। इससे प्रसंग के अनुसार तात्पर्य सूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा से ही हो सकता है। परन्तु यह भी सम्भव है कि उत्तरापथ में इस नाम का कोई अन्य नगर भी रहा हो। मज्झिम-निकाय के मधुर या माधुरिय सुत्त में केवल 'मधुरा' का उल्लेख है, जिससे तात्पर्य स्पष्टतः शूरसेन की राजधानी मथुरा से ही है। दक्षिण की मधुरा (मदूरा) के लिए भी केवल 'मधुरा' शब्द का प्रयोग महावंश ७।४८-५१ (हिन्दी अनुवाद) में किया गया है। अतः ऐसा लगता है कि भ्रम के निवारण के लिये ही शूरसेन जनपद की राजधानी 'मथुरा' के लिये 'उत्तर मधुरा' शब्द का प्रयोग किया गया है।

२. भगवान् बुद्ध ने मथुरा की यह यात्रा सम्भवतः बुद्धत्व-प्राप्ति के बारहवें वर्ष में वेरंजा में वर्षावास करने के समय की। मूल सर्वास्तिवाद की परम्परा की मान्यता इससे कुछ भिन्न है। देखिये द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल का विवेचन।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५६।

"भिक्षुओ! मथुरा मे ये पाँच दोष हैं। कौन से पाँच? यहाँ के मार्ग विषम हैं, धूल बहुत उड़ती है, कुत्ते बड़े भयंकर हैं, अज्ञानी यक्ष हैं और भिक्षा मुश्किल से मिलती है। भिक्षुओ! मथुरा में ये पाँच दोष हैं।" मूल सर्वास्तिवादी परम्परा में ये दोष, जिनकी संख्या यहाँ भी पाँच ही है, कुछ भिन्न प्रकार से बताये गये हैं।[1]

मथुरा का बौद्ध धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही स्थापित हो गया था और यह उस नगरी के अनुरूप भी था जो राजगृह से तक्षशिला तक जाने वाले उस समय के और आज के भी सबसे बड़े व्यापारिक मार्ग पर स्थित थी। भगवान् बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य महाकात्यायन, जिनका प्रमुख कार्य-क्षेत्र यद्यपि अवन्ति प्रदेश था और जिन्हें हम राजगृह के तपोदाराम,[2] श्रावस्ती[3], सोरेय्य[4], वरणा[5] तथा अन्य कई स्थानों में विहार करते देखते हैं, मथुरा में भी बुद्ध-शासन का प्रचार करने आये थे। जातिवाद पर एक ओजस्वी भाषण महाकात्यायन ने राजा माथुर अवन्तिपुत्र को दिया था, जो मज्झिम-निकाय के मधुर-या माधुरिय-सुत्तन्त में निहित है। जिस समय यह उपदेश दिया गया था, भगवान् परिनिर्वृत्त हो चुके थे। इसलिये उपदेश के अनन्तर जब माथुर अवन्तिपुत्र ने

---

१. ये दोष इस प्रकार हैं, (१) ऊँचे-नीचे कुलों का भेद है, (२) मार्गों में झाड़ियाँ और काँटे अधिक हैं, (३) पत्थर और कंकड़ियाँ अधिक हैं, (४) रात्रि के पिछले पहर में भोजन करने वाले लोग यहाँ हैं और (५) यहाँ स्त्रियों की अधिकता है। "पञ्चेमे भिक्षव आदीनवा मथुरायाम्। कतमे पञ्च? उत्कुल-निकुला, स्थाणुकण्टकप्रधाना, बहुपाषाणशार्करकठल्ला, उच्चन्द्रभक्ता, प्रचुरमातृग्रामा इति"। गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ १४-१५। मूल सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार इन दोषों के विवरण के लिए देखिए वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१२ भी।

२. महाकच्चायन-भद्देकरत्त-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।४।३)।

३. आनापान-सति-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।२।८); उद्देस-विभंग-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।४।८)।

४. देखिये पीछे सोरेय्य नगर का वर्णन।

५. देखिये पीछे कुरु जनपद का विवरण।

महाकात्यायन से पूछा, "हे कात्यायन ! वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध इस समय कहाँ विहार करते हैं ?", तो महाकात्यायन ने उत्तर दिया, "महाराज ! वे भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध तो निर्वाण को प्राप्त कर चुके हैं।"[१] जब आर्य महाकात्यायन मथुरा में निवास कर रहे थे उसी समय कण्डरायण नामक ब्राह्मण उनसे मिलने आया था।[२] विमानवत्थु-अट्ठकथा[३] में उल्लेख है कि एक बार भगवान् बुद्ध ने श्रावस्ती से मथुरा (उत्तर मधुरा) आकर एक मरणासन्न नारी के भोजन को ग्रहण किया था, जिससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। बुद्ध-चरित (२१।२५) में मथुरा में एक भयानक गर्दभ नामक यक्ष के भी दीक्षित किये जाने का उल्लेख है।

मज्झिम-निकाय के उपर्युक्त मधुर-सुत्त या माधुरिय-सुत्तन्त में हम स्थविर महाकात्यायन को मथुरा के "गुन्दावन" या "गुन्दवन" नामक स्थान में विहार करते देखते हैं, "एकं समयं आयस्मा महाकच्चानो मधुरायं विहरति गुन्दावने।"[४] यहीं राजा माथुर अवन्तिपुत्र मथुरा से सवारी में बैठकर उनके दर्शनार्थ गया। यह 'गुन्दावन" या "गुन्दवन" आधुनिक क्या स्थान हो सकता है ? डा० मलल-सेकर ने हमें बताया है कि पपंचसूदनी[५] में "गुन्दावन" का एक पाठ "कण्हगुन्दा-वन" भी है।[६] इसे हम संस्कृत "कृष्णकुण्डवन" का प्रतिरूप मान सकते हैं।[७] इस महत्वपूर्ण पाठान्तर से हमें "गुन्दावन" की आधुनिक स्थिति की पहचान का

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३४३।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ ६७-६८।

३. पृष्ठ ११८-११९।

४. मज्झिम-निकायो (मज्झिम-पण्णासकं), पृष्ठ २६८ (बम्बई विश्व-विद्यालय संस्करण)।

५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७३८।

६. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७७८।

७. डा० विमलाचरण लाहा ने 'गुन्दावन' का संस्कृत प्रतिरूप 'गुणावन' दिया है (इण्डोलोजीकल स्टडीज, भाग तृतीय, पृष्ठ ३९) जो इस स्थान की पहचान में तो हमारी सहायता करता ही नहीं, व्याकरण की दृष्टि से भी उसे चिन्त्य कहा जा सकता है।

एक आधार मिलता है। मूल सर्वास्तिवाद के विनय-पिटक, दिव्यावदान तथा अशोकावदान के चीनी अनुवाद में उल्लेख है कि भगवान् बुद्ध शूरसेन जनपद में चारिका करते हुए एक बार मथुरा गये थे जहाँ आनन्द ने उन्हें उरुमुण्ड नामक पर्वत पर स्थित एक हरा-भरा वन दिखलाया था जो गहरे नील वर्ण का था। इस वन को देखकर भगवान् बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि मेरे परिनिर्वाण के एक सौ वर्ष बाद नट और भट नाम के दो धनवान् भाई यहाँ विहार बनवायेंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि यहीं (उरुमुण्ड पर्वत पर) उपगुप्त की दीक्षा होगी और यह भिक्षु दूर-दूर तक बुद्ध-शासन का प्रचार करेगा।[1] यदि भविष्यवाणी की बात हम छोड़ दें और केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही विचार करें तो इतना उपर्युक्त कथन से कम से कम अवश्य निश्चित हो जाता है कि अशोक के समय मे सर्वास्तिवादी परम्परा मथुरा के उरुमुण्ड पर्वत को भगवान् बुद्ध की पद-रज से पवित्र किया हुआ स्थान मानती थी और इसीलिये वहाँ नट-भट विहार की स्थापना की गई थी। वहीं उपगुप्त की उपसम्पदा हुई थी और वहीं उपगुप्त विहार नामक बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध प्रचार-केन्द्र बना था। यद्यपि उरुमुण्ड पर्वत को ग्राउज ने वर्तमान मथुरा का कंकाली टीला माना था (देखिए उनका 'मथुरा', अध्याय. ६), परन्तु यह समझ में नहीं आता कि यह टीला बौद्ध संस्कृत परम्परा का उरुमुण्ड 'पर्वत'. किस प्रकार हो सकता है? यह बहुत सम्भव है कि कंकाली देवी का मंदिर किसी भग्न बौद्ध विहार के ऊपर बना हो, परन्तु उसे उरुमुण्ड पर्वत पर स्थित उपगुप्त-विहार मानना उचित नहीं है। हमारी समझ में 'नीलनीलाम्बरराजि' (दिव्यावदान, पृष्ठ ३४९) के समान दिखाई देने वाला 'रुरुमुण्ड' या उरुमुण्ड पर्वत गोवर्द्धन पर्वत ही है, जैसा उसके इस वर्णन से अपने आप सिद्ध हो जाता है। अब चूँकि इस गोवर्द्धन पर्वत के समीप ही प्रसिद्ध राधाकुण्ड के पास श्याम कुण्ड या कृष्ण कुण्ड (कण्हकुण्ड) है जिससे लगा हुआ हरा-भरा वन है, जो यद्यपि

---

१. गिलगित मैनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ ३-१७; दिव्यावदान, पृष्ठ ३४८-३४९। मिलाइये वाटर्स : ऑन् युआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०६-३१३; रॉकहिल : दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ १६४।

आज उतना गहरा नीला नहीं है, जितना बुद्ध-काल में रहा होगा, फिर भी उत्तर-प्रदेश राज्य-सरकार के शुभ प्रयत्न से जिसे फिर नीला बनाये जाने का उद्योग किया जा रहा है और उसमें काफी सफलता भी मिली है। क्या कृष्ण-कुण्ड के पास अवस्थित यह वन ही पालि का 'कण्हकुण्डवन' नहीं हो सकता, जिसका ही दूसरा नाम केवल 'गुन्दावन' (कुण्डवन) या कण्हगुन्दावन (कृष्ण कुण्ड-वन) था ? जब हम मूल सर्वास्तिवाद के पूरक साक्ष्य पर स्पष्टतः जानते हैं कि मथुरा के उरुमुण्ड या रुरुमुण्ड पर्वत के समीप के वन में भगवान् बुद्ध ने विहार किया था, तो हमें पालि परम्परा के मथुरा के गुन्दावन के बारे में, जिसकी स्थिति के बारे मे वहाँ कुछ नहीं कहा गया है, यह समझने में देर नहीं लगनी चाहिये कि वह गोवर्द्धन पर्वत के समीप स्थित कृष्णकुण्ड के पास का वन ही था, जिसका स्पष्टतः नाम 'कण्हगुन्दावन' पालि परम्परा मे भी पाठान्तर के रूप में दिया गया है। यहीं अपने शास्ता के पद-चिह्नो का अनुसरण करते हुए आर्य महाकात्यायन ने विहार किया था। यह असम्भव नहीं है कि भगवान् बुद्ध और स्थविर महाकात्यायन के द्वारा गोवर्द्धन पर्वत को पवित्र किया जाना ही इस स्थान के अशोककालीन नट-भट विहार और उपगुप्त विहार के लिये उपयुक्त भूमि के रूप में चुनाव के लिये उत्तरदायी रहा हो। अतः गोवर्द्धन पर्वत से कुछ दूर 'राधा कुण्ड' से लगे हुए कृष्ण कुण्ड के पास के वन को हम बुद्धकालीन गुन्दावन मान सकते हैं। अन्यथा हमें उसकी स्थिति को कंकाली टीले के पास खोजना पड़ेगा, जिसके लिये कम अवकाश ही जान पड़ता है। गुन्दावन को वृन्दावन मानने का लोभ भी हो सकता है, परन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। हाँ, एक बात और हो सकती है। पालि शब्द 'गुन्दा' का अर्थ मौथा या नागर-मौथा घास होता है। सम्भव है मथुरा के पास इस घास का कोई वन रहा हो। जहाँ तक ब्रज के बारह वनों और चौबीस उपवनों का सम्बन्ध है, उनमें गुन्दावन, कुण्डवन या गुणावन से मिलता-जुलता कोई नाम नहीं है। एक जगह "कुन्दवन" का उल्लेख अवश्य है, जो निश्चयतः पालि का गुन्दावन हो सकता है, परन्तु इस लेखक को बहुत खोजबीन करने पर भी इस नाम का कोई वन आज नहीं मिल सका है।

घट जातक में उत्तर मथुरा के महासागर नामक राजा का वर्णन

है, जिसके सागर और उपसागर नामक दो पुत्र थे। राजा महासागर की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सागर राजा बना और उपसागर उपराज। बाद में उपसागर अपने बड़े भाई से लड़-झगड़कर उत्तरापथ के कंसभोग नामक राज्य में भाग गया। हम इस कथा और उसके भौगोलिक अर्थ का विवेचन आगे करेंगे। 'मिलिन्दपञ्हो' में प्रसिद्ध नगरों और उनके निवासियों के नामोल्लेख के एक प्रसंग में 'माधुरका' (मथुरा के निवासी) भी आया है।[1] इससे विदित होता है कि राजा मिलिन्द (मिनाण्डर) के समय (१५० ई० पूर्व) या कम से कम 'मिलिन्द-पञ्हो की रचना के समय (१५० ई० पूर्व और ४०० ई० के बीच) मथुरा नगर पालि परम्परा में एक प्रसिद्ध और सुप्रतिष्ठित नगर के रूप में प्रसिद्ध था।

मधुरा (मथुरा) या उत्तर-मधुरा के सम्बन्ध मे पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में केवल उतनी ही सूचना मिलती है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। पांचवीं और सातवी शताब्दी ईसवी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने इस ऐतिहासिक नगर की यात्रा की। फा-ह्यान ने इसे "म-तो-लो" या मयूर-नगर कहकर पुकारा है।[2] यूआन् चुआङ् ने इसका नाम "मो-तु-लो" दिया है।[3] फा-ह्यान ने मथुरा में कई बौद्ध विहार देखे थे जिनमें भिक्षुओं की संख्या काफी थी।[4] यूआन् चुआङ् ने मथुरा नगरी का विस्तार २० 'ली' और पूरे प्रदेश का ५००० 'ली' बताया है। उसने यहाँ की जलवायु को गरम बताया है। भूमि को उपजाऊ बताया है और यहाँ का मुख्य उद्यम खेती बताया है। यहाँ के निवासियों के बारे मे उसने कहा है कि वे कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। यहाँ

---

१. पृष्ठ ३२४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); देखिए मिलिन्द-प्रश्न (भिक्षु जगदीश काश्यप-कृत हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ४०७ (द्वितीय संस्करण)।

२. लेजे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४२।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली पृष्ठ ३०१।

४. लेजे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४२।

के बौद्ध विहारों और देव-मन्दिरों का भी उसने उल्लेख किया है।[१] अशोक के काल में स्थापित मथुरा के उरुमुण्ड पर्वत पर स्थित नट-भट-विहार और उपगुप्त-विहार का उल्लेख हम पहले कर चुके है। पीछे के युग में हम वसुबन्धु के शिष्य गुणप्रभ को भी मथुरा के अग्रपुर विहार में निवास करते देखते हैं।[२] मथुरा के इस अग्रपुर विहार को हम वर्तमान आगरा के आसपास स्थित मानने के लोभ का संवरण नहीं कर सकते, क्योंकि आज जहाँ आगरा स्थित है वह स्थान प्राचीन काल में शूरसेन या मथुरा-प्रदेश में ही माना जाता था। परन्तु बुद्ध-काल से इतनी दूर जाकर जाँच-पड़ताल करने की अनुमति हमारा विषय हमे नही देता। हाँ, हमे यह और कह देना चाहिए कि यूआन् चूआङ ने मथुरा मे कई स्तूपो का उल्लेख किया है, जिनमें सारिपुत्र के स्तूप को विद्वानों ने वर्तमान भूतेश्वर के मन्दिर से अभिन्न मानने की प्रवृत्ति दिखाई है।

प्राचीन मथुरा को वर्तमान मथुरा नगर से कुछ परिमित रूप में मिलाया जा सकता है। इसका कारण यह है कि गत शताब्दियों में यमुना नदी का प्रवाह काफी परिवर्तित हो गया है। यह आश्चर्यजनक है कि कुछ बातें जो बुद्ध ने मथुरा के बारे में बताई, आज भी पाई जाती है। आज भी मथुरा मे धूल बहुत उड़ती है। वह 'बहुरजा' है। इससे विदित होता है कि रेगिस्तान का प्रभाव मथुरा पर बुद्ध के काल में भी पड़ना आरम्भ हो गया था। आज तो ब्रज की रज प्रसिद्ध ही हो गई है। मथुरा में बुद्ध को भिक्षा मुश्किल से मिली। इससे लगता है कि अपने नाम को सार्थक इस नगरी 'मधुरा' में उस समय भी मधुरभाव की प्रतिष्ठा रही होगी। वह दूसरे अर्थ मे भी 'बहुरजा' होगी। विराग और शून्य की बातें यहाँ कौन सुनता ? कुछ भी हो, बाद में चल कर मथुरा ने "सर्वास्तिवाद' के रूप में बौद्धधर्म को एक नया मोड़ दिया और अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक उसका

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डियाँ, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०१।

२. बील : बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ १९१, टिप्पणी।

प्रचार किया। पालि के स्थान पर संस्कृत को बौद्ध धर्म का वाहन बनाने का काम भी सम्भवतः मथुरा में ही आरम्भ किया गया।

कंस के राज्य (कंसभोग) का उल्लेख घट जातक में है। यह कंस महाकंस का पुत्र था और उपकंस नामक इसका एक भाई और देवगब्भा नामक एक बहिन थी। वासुदेव के द्वारा कंस के वध का भी उपर्युक्त जातक में उल्लेख है। विशेषतः वासुदेव के द्वारा कंस के वध की बात हमें पालि साहित्य के कंस को महाभारत और पुराणों के कंस से मिलाने को प्रेरित करती है। परन्तु कंस के राज्य को पालि बिवरण में उत्तरापथ में स्थित बताया गया है तथा उसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी बताई गई है, जब कि महाभारत और पुराणों का राजा कंस मथुरा नगरी में राज्य करता था। यही कुछ कठिनाई है। ऐसा लगता है कि उत्तर मधुरा, कंसभोग और गोवड्ढन (गोवर्द्धन—देखिये आगे विवरण) को लेकर पालि बिवरण में काफी भ्रामकता है। ऊपर घट जातक के आधार पर हम इनके सम्बन्ध की कथा का विवरण दे ही चुके हैं, पेतवत्थु की अट्ठकथा में इससे भी विभिन्न इसका एक रूप मिलता है, जिससे भ्रामकता अधिक बढ़ती ही है। अधिक विस्तार में न जाकर हमें इस समस्या का यही समाधान उचित जान पड़ता है कि जैसे "मधुरा' में "उत्तर" शब्द लगा रहने पर भी "उत्तर मधुरा" को हम मज्झिम-देस के सूरसेन जनपद की नगरी ही मानते है, उसी प्रकार कंसभोग के उत्तरापथ मे होने पर भी उसे सूरसेन जनपद का ही एक अंग माना जा सकता है। मथुरा में स्थित भग्नावशिष्ट 'कंस का किला', 'कंस का टीला' और 'कंस का कारागार' आदि स्थान भी इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। डा० मललसेकर ने 'अपदान' के कम्बोज और घट-जातक के कंसभोज को एक देश मानने का सुझाव दिया है।[१] उत्तरापथ के अन्तर्गत कंसभोग या कंसभोज (कंस-राज्य) की राजधानी असितंजन नगरी थी। इस नगरी का आधुनिक पता लगाना कठिन है। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा[२] में असितंजन को तपस्सु और भल्लिक की जन्मभूमि बताया गया है।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६; देखिये आगे कम्बोज और सुरट्ठ जनपदों के वर्णन भी।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २०७।

गोवड्ढमान या गोवड्ढन को घट जातक में उत्तरापथ का एक गाँव बताया गया है। यह गाँव कंस के राज्य (कंसभोग) में था। कंस और उसके छोटे भाई उपकंस ने अपनी बहिन देवगब्भा का विवाह उत्तर मधुरा के राजा महासागर के छोटे पुत्र उपसागर से, जो अपने बड़े भाई सागर से (जो महासागर की मृत्यु के बाद राजा बना था) लड़-झगड़ कर उत्तर मधुरा से कंसभोग के असितंजन नगर में आकर बस गया था, कर दिया और गोवड्ढमान या गोवड्ढन गाँव भेंट स्वरूप दिया। हम पालि के इस गोवड्ढमान या गोवड्ढन गाँव को आधुनिक गोवर्द्धन गाँव से मिला सकते हैं, जो मथुरा से १४ मील दूर गोवर्द्धन पर्वत के समीप स्थित है।

दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में बुद्ध-पूर्व काल के भारत के जिन सात खण्डों और उनकी राजधानियों का उल्लेख है, उनमें एक अस्सक राज्य और उसकी राजधानी पोतन भी है। "अस्सकानं च पोतनं"। अस्सक जनपद भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा सुत्त-निपात से प्रकट होता है, गोदावरी के तट के आसपास बसा हुआ प्रदेश था। इस प्रकार यह जनपद दक्षिणापथ में था। जैसा सुत्त-निपात की अट्ठकथा से प्रकट होता है, अस्सक जनपद गोदावरी नदी के दक्षिण मे स्थित था और अलक (जिसका बरमी प्रति में पाठान्तर मूलक भी है) नामक जनपद गोदावरी के उत्तर में था। ये दोनों जनपद सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार अन्धक (आन्ध्र) राज्य में सम्मिलित थे। अस्सक जातक मे कहा गया है कि एक बार अस्सक राज्य और उसकी राजधानी पोतन नगरी काशी राज्य की अधीनता में आ गये थे। चुल्ल-कालिंग जातक में हम अस्सक राजा को कलिंग-राजा पर विजय प्राप्त करते देखते हैं। निश्चयतः ये घटनाएँ विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। पालि "अस्सक" शब्द के संस्कृत प्रतिरूप "अश्वक" (घोड़ों का प्रदेश) और "अश्मक" (पाषाणों का प्रदेश) दोनों ही हो सकते हैं। परन्तु वस्तुतः 'अश्मक' ही ठीक और भ्रामकता से रहित है। 'अश्वक' देश तो हमें वस्तुतः उसे ही मानना चाहिये जिसका उल्लेख ग्रीक इतिहासकारों ने "अस्सकेनस" या "अस्सकेनोइ" राज्य के रूप में किया है और जो पूर्वी अफगानिस्तान या स्वात की घाटी में कहीं स्थित था। पालि परम्परा के आधार पर भी हम जानते हैं कि अश्वों के लिये विशेष ख्याति बुद्ध-काल में कम्बोज और सिन्धु नदी के घाटी के प्रदेश की थी। अतः 'अश्वक' देश को भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त में ही कहीं मानना

संगत है। परन्तु 'अश्मक' और 'अश्वक' का इतना स्पष्ट और निश्चित प्रयोग हमें प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता। हम जानते हैं कि पाणिनि ने अपने एक सूत्र "साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् (४।१।१७३) में अश्मक जनपद का उल्लेख किया है और इसी प्रकार मार्कण्डेय पुराण और बृहत्संहिता में भी अश्मक राज्य का उल्लेख है। असंग के महायान सूत्रालंकार में भी "अश्मक" राज्य का उल्लेख किया गया है। महाभारत के विभिन्न पर्वों में 'अश्मक' और 'अश्वक' दोनों ही नामों का प्रयोग किया गया है और उसके वर्णनों से हम किसी निश्चित भौगोलिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। कुछ भी हो, पालि का अस्सक जनपद निर्विवाद रूप से गोदावरी के तट के आसपास दक्षिणापथ में स्थित था और उसे भारत के पंजाब या उत्तर-पश्चिम प्रान्त में स्थित अश्वक राज्य से अलग समझना चाहिये। यह सम्भव हो सकता है, जैसा कुछ विद्वानों का विचार है, कि यह दक्षिणापथ का अस्सक जनपद और उत्तर-पश्चिम या पंजाब का अश्वक जनपद, दोनों एक ही जाति की विभिन्न शाखाओं के द्वारा बसाये गये हों, परन्तु इसके लिये कोई निश्चित प्रमाण हमारे पास नहीं है। सोणनन्द जातक में निश्चित रूप से अस्सक राज्य को अवन्ती से युक्त किया गया है।[1] "अस्सकावन्ती" इससे डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अस्सक राज्य का प्रदेश अवन्ती की दक्षिणी सीमा तक फैला था।[2] चुल्ल-कालिंग जातक और अस्सक जातक में अस्सक जनपद की राजधानी पोटलि (पोतलि) नामक नगरी बतायी गई है, जो महागोविन्द-सुत्त के पोतन के प्राय समान ही है। पोतन या पोटलि आधुनिक क्या स्थान हो सकता है, इसके सम्बन्ध में अभी सम्यक् निर्णय नहीं हो पाया है। नन्दोलाल दे ने उसे पतिट्ठान (प्रतिष्ठान—आधुनिक पैठन) से मिलाया था,[3] जो ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पतिट्ठान

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१७।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १४३।

३. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ १५७, १५९। पोतन (या पोटलि) और पतिट्ठान (प्रतिष्ठान) को एक नगर दे को इसलिये मानना पड़ा, क्योंकि उन्होंने बिलकुल गलत रूप से अस्सक (अश्मक) और अलक

का एक भिन्न नगर के रूप में स्वयं सुत्त-निपात में वर्णन है।[1] अतः पालि वर्णनों के आधार पर हम पोतन या पोटलि और पतिट्ठान को एक स्थान कभी नहीं मान सकते। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने महाभारत के आदि-पर्व के पोतन या पोदन (पौदन्य पाठ, जो महाभारत के संस्करणों में प्रायः पाया जाता है, डा० सुक्थंकर के मतानुसार उत्तरकालीन है और प्राचीनतम प्रतियों में पोतन या पोदन ही पाठ है) नामक नगर को पालि के पोतन या पोटलि से मिलाकर उसे आधुनिक बोधन नामक नगर बताया है, जो हैदराबाद राज्य में मंजिरा और गोदावरी नदियों के संगम के दक्षिण में स्थित है।[2] इस पहचान को हम सर्वथा ठीक मान सकते हैं, क्योंकि पालि विवरणों के अनुसार यह बैठ जाती है और पोतन या पोटलि का बोधन के रूप में शब्द-विकार भी अत्यन्त स्वाभाविक ही है।[3] अस्सक राज्य में स्थित बावरि के आश्रम का और गोदावरी नदी और बावरि के आश्रम के पास उसमें बनने वाले एक टापू का, जिसमें कविट्ठ वन स्थित था, हम विस्तृत परिचय पहले दे चुके है।

अलक (मूलक भी पाठान्तर), जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अस्सक के उत्तर में, विंध्याचल के नीचे, स्थित था। पतिट्ठान (प्रतिष्ठान) नगर अलक राज्य की राजधानी था, जैसा सुत्त-निपात के पारायण वग्गो की वत्थुगाथा के "अलकस्स पतिट्ठानं" प्रयोग से स्पष्ट प्रकट होता है। पतिट्ठान दक्षिणापथ मार्ग का

राज्यों को (जिनकी ये नगर क्रमशः राजधानियाँ थे) एक मान लिया है। देखिये वहीं पृष्ठ ३, १३, १५७। पालि परम्परा के स्पष्ट साक्ष्य पर अस्सक और अलक भिन्न राज्य थे और स्वभावतः उनकी राजधानियाँ पोतन (या पोटलि) और पतिट्ठान भी भिन्न-भिन्न नगर थे।

१. देखिये प्रथम परिच्छेद में सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व का निर्देश।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८९, १४३।

३. महाभारत के आदि-पर्व के अनुसार पोतन, पोदन या पौदन्य नगर को इक्ष्वाकुवंशीय राजा कल्माषपाद की पत्नी मदयन्ती और वशिष्ठ के संयोग से उत्पन्न पुत्र राजर्षि अश्मक ने बसाया था। इस प्रकार यहाँ भी अश्मक (अस्सक) और पौदन्य (पोतन, पोटलि) का सम्बन्ध सुनिश्चित ही है।

अन्तिम पड़ाव था। बावरि ब्राह्मण के शिष्यों ने यहीं से अपनी श्रावस्ती तक की यात्रा शुरू की थी। प्रतिष्ठान से चलकर उनके मार्ग में श्रावस्ती तक क्रमशः माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनद्ध, विदिशा (वेदिसं), कौशाम्बी और साकेत नगर पड़े थे, जिससे स्पष्ट विदित होता है कि इन सब नगरों के साथ पतिट्ठान व्यापारिक मार्ग के द्वारा जुड़ा हुआ था और दक्षिणापथ को उत्तरापथ से जोड़ने वाला वह दक्षिण में मुख्य और अन्तिम स्थान बुद्ध-काल में था। पतिट्ठान (प्रतिष्ठान) नगर तोलेमी को "बैठन" के नाम से विदित था और उसका आधुनिक नाम पैठन ही है।

अवन्ती जनपद का विवेचन हम अवन्ती राज्य का परिचय देते समय कर चुके हैं। एक जनपद के रूप में अवन्ती उज्जेनी (उज्जयिनी) से लेकर माहिष्मती तक का प्रदेश माना जाता था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध-पूर्व काल में यह जनपद दक्षिण में नर्मदा नदी की घाटी तक फैला हुआ था, क्योंकि इस नदी के किनारे स्थित माहिष्मती नगर को इस सुत्त में अवन्ती की राजधानी बताया गया है, जिसे राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने बुद्ध-पूर्व काल में स्थापित किया था। अवन्ती जनपद एक समृद्ध भूमि-भाग था। दूसरी शताब्दी ईसवी तक अवन्ती का यही नाम रहा। करीब आठवीं शताब्दी ईसवी से हम उसे मालव नाम से पुकारा जाते देखते हैं। अवन्ती के दो भागों, अवन्ति दक्षिणापथ और (उत्तर) अवन्ती का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। एक राज्य के रूप में उसके नगरों आदि का परिचय भी पहले दिया जा चुका है।

गन्धार जनपद की गणना जम्बुद्वीप के सोलह महाजनपदों में है। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपंचसूदनी)[1] में गन्धार राष्ट्र को एक 'पच्चन्तिम' जनपद अर्थात् सीमान्त में स्थित जनपद बताया गया है। पालि साहित्य में गन्धार शब्द का प्रयोग अक्सर कस्मीर (कश्मीर) के साथ मिलाकर किया गया है, जैसे अंग और मगध का, या काशी और कोसल का। "कासिकोसले पि कस्मीरे गन्धारे पि।"[2] कस्मीर तो आधुनिक कश्मीर है ही, गन्धार को हम स्वात नदी

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९८२।

२. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३२१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

से झेलम नदी तक का प्रदेश मान सकते हैं। इस प्रकार उसमें पश्चिमी पंजाब और पूर्वी अफगानिस्तान के भाग सम्मिलित थे।

गन्धार राष्ट्र के दो राजाओं का उल्लेख पूर्ववर्ती पालि साहित्य में है। एक राजा नग्गजि (नग्नजित्) का, जिसे कुम्भकार जातक में विदेह के राजा निमि तथा पंचाल के राजा दुम्मुख (दुर्मुख) का समकालीन बताया गया है। यह बहुत सम्भव है कि पालि का यह नग्गजि वही हो जिसे शतपथ-ब्राह्मण (८।१।४।१०) में नग्नजित् कहकर पुकारा गया है और जिसे वहाँ गन्धार का राजा भी बताया गया है। दूसरा प्रसिद्ध राजा, जिसका उल्लेख पालि साहित्य में है, पुक्कुसाति है। पुक्कुस उसकी जाति बताई गई है। मज्झिम-निकाय के धातु-विभंग-सुत्त की अट्ठकथा में पुक्कुसाति को बिम्बिसार का समकालीन और मित्र बताया गया है। इसी राजा को मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में पुष्करसारिन् कहकर पुकारा गया है।[1] बिम्बिसार ने गन्धार राष्ट्र के इस राजा को भगवान् बुद्ध के आविर्भाव की सूचना देते हुए तक्षशिला के व्यापारियो के हाथ, जो राजगृह में व्यापारार्थ आये थे, एक सन्देश भेजा था। बाद में इन दोनों राजाओ में भेंटों का आदान-प्रदान भी हुआ। बुद्ध के सुने हुए उपदेशो से ही पुक्कुसाति सवेगापन्न हो गया और साधु होकर पैदल मगध आया। एक बार हम उसे राजगृह के भार्गव नामक कुम्भकार के घर में ठहरते देखते है, जहाँ भगवान् भी रात भर टिकने के लिये जा निकले और दोनों में संलाप हुआ, जिसके अन्त मे ही पुक्कुसाति जान पाया कि जिनके नाम पर उसने घर छोड़ा था वही तो भगवान् बुद्ध उससे बात कर रहे है। इसी को उसने अपने लिये बुद्ध का उपदेश माना। खेद है कि इसके कुछ काल पश्चात् ही पुक्कुसाति की मृत्यु एक पागल गाय के द्वारा चोट पहुँचाये जाने के कारण हो गई।[2] कई जातक कथाओं में बिना नाम लिये 'गन्धार राजा' शब्द का प्रयोग कई जगह किया गया है[3], जिससे यह ज्ञात होता है कि गन्धार जनपद

---

१. गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३१।

२. धातु-विभंग-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।४।१०)।

३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २१९; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६४; जिल्द चौथी, पृष्ठ ९८।

और उसके राजाओं के बारे में पालि परम्परा सुपरिचित थी। पुक्कुसाति के राज्य का विस्तार पपंचसूदनी[1] में १०० योजन बताया गया है। बुद्धकालीन भारत में गन्धार राष्ट्र अपने लाल ऊनी दुशालों और कम्बलों के लिये प्रसिद्ध था।[2] जातक[3] में गन्धार के गहरे लाल (इन्द्रवधू नामक कीड़ों के से रंगवाले) और पाण्डु वर्ण कम्बलों (इन्दगोपकवण्णाभा गन्धारा पण्डुकम्बला) की प्रशंसा की गई है। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद (१।१२६।७) में भी गन्धारि लोगों के प्रदेश की भेड़ों की सुन्दर ऊन का उल्लेख किया गया है। मज्झिम-निकाय के धातु-विभंग-सुत्तन्त की अट्ठकथा में कहा गया है कि गन्धार के राजा पुक्कुसाति ने अपने नौकरों के हाथ आठ पंचरंगी कीमती दुशालों की भेंट महाराज बिम्बिसार के पास भेजी थी।

जातक[4] में विदेह के साथ गन्धार के व्यापारिक सम्बन्धों का उल्लेख है। वस्तुतः अंग, मगध, कोसल और लाल रट्ठ तक के व्यापारियों के व्यापारार्थ गन्धार जाने के उल्लेख मिलते हैं। अशोक के समय में स्थविर मज्झन्तिक ने गन्धार और कश्मीर (कस्मीर) में बुद्ध-धर्म का प्रचार किया।[5]

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९८८।

२. परमत्थजोतिका (सुत्तनिपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८७।

३. जिल्द छठी, पृष्ठ ५००-५०१।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६५।

५. महावंश १२।९-२६ (हिन्दी अनुवाद); सर्वास्तिवाद की परम्परा के अनुसार स्थविर मध्यन्दिन ने (जिन्हें पालि के मज्झन्तिक से मिलाया जा सकता है) अशोक के समय में और स्थविर धीतिक ने राजा मिनाण्डर के समय में गन्धार और कश्मीर में बुद्ध-धर्म का प्रचार किया। स्थविर मध्यन्दिन आनन्द के शिष्य थे। मध्यन्दिन के शिष्य मथुरा के उरुमुण्डवासी प्रसिद्ध अशोककालीन भिक्षु उपगुप्त थे। उपगुप्त के शिष्य धीतिक थे। (सर्वास्तिवादी परम्परा की एक अन्य शाखा के अनुसार जिसका अनुगमन दिव्यावदान (पृष्ठ ३४९) में किया गया है, उपगुप्त शाणकवासी के शिष्य थे)।

गन्धार राष्ट्र की राजधानी तक्कसिला (तक्षशिला) नगरी थी। नन्दिविसाल जातक और सारम्भ जातक मे गन्धारराज को इस नगरी मे रह कर राज्य करते दिखाया गया है। तक्षशिला शिक्षा और व्यापार दोनों ही दृष्टियों से दूर-दूर तक विख्यात थी। यह नगरी अधिकतर अपने ग्रीक रूपान्तर "टेक्सिला" के नाम से भी पुकारी जाती है और आजकल इस प्राचीन वैभवशालिनी नगरी और शिक्षा-केन्द्र का जो कुछ बच रहा है, वह रावलपिंडी (पश्चिमी पाकिस्तान) के १२ मील उत्तर-पश्चिम "शाह की ढेरी" के रूप में देखा जा सकता है।[1] भगवान् बुद्ध और उनके पूर्व के युग में तक्षशिला की ख्याति एक विशाल विश्वविद्यालय और शिक्षा-केन्द्र के रूप में सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में फैली हुई थी। वहाँ तीनों वेद और अठारहों विद्याएँ पढाई जाती थी, जिनमें धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि सभी महत्वपूर्ण शिल्प सम्मिलित थे।[2] जैसा हम पहले एक बार कह चुके है, कोसलराज प्रसेनजित्, महालि लिच्छवि और बन्धुल मल्ल की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी।[3] जीवक वैद्य तो तक्षशिला का एक प्रसिद्ध स्नातक था ही।[4] कण्हदिन्न, यसदत्त और अवन्ती-निवासी धम्मपाल आदि अनेक बुद्धकालीन स्थविरों ने भिक्षु-सघ में प्रवेश से पूर्व तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की थी। अनेक देशों से विद्यार्थी तक्षशिला में पढने आते थे। इस प्रकार लाल (लाट) देश[5] कुरु देश[6] और सिवि देश[7] से विद्यार्थियो को तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त करने के लिये आते हम देखते है। कण्ह जातक मे वाराणसी के एक ब्राह्मण-पुत्र के विद्या-प्राप्ति के हेतु तक्षशिला जाने का उल्लेख है। तिलमुट्ठि-जातक में हम वाराणसी के एक राजकुमार को भी तक्षशिला में अध्ययन के लिये

---

१. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६८०-६८१; मिलाइये मार्शल : गाइड टू टैक्सिला, पृष्ठ १-४।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १५९।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३७।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।

५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४४७।

६. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८८।

७. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २१०।

जाते देखते हैं और इसी प्रकार निग्रोध जातक में उल्लेख है कि राजगृह के एक सेठ ने अपने दो पुत्रों को तक्षशिला में अध्ययनार्थ भेजा था। दरीमुख जातक और संखपाल जातक में मगध के राजकुमारों के तक्षशिला में अध्ययनार्थ जाने का उल्लेख हैं। एक अन्य जातक-कथा में मगध के राजकुमार दुर्योधन के भी शिल्प सीखने के लिये तक्षशिला जाने का उल्लेख है।[1] ब्रह्मदत्त जातक से पता चलता है कि कम्पिल्ल रट्ठ से भी लोग तक्षशिला में अध्ययनार्थ जाते थे। इसी प्रकार तित्तिर जातक में तक्षशिला का एक शिक्षा-केन्द्र के रूप में उल्लेख है तथा भीमसेन जातक और राजोवाद जातक में भी। उद्दालक जातक में उद्दालक की तक्षशिला-यात्रा का वर्णन है, जहाँ उसने एक लोक-प्रसिद्ध आचार्य के विषय में सुना। इसी प्रकार सेतकेतु जातक में उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु के तक्षशिला जाने और वहाँ सम्पूर्ण शिल्पों को सीखने का उल्लेख है। यह महत्वपूर्ण बात है कि उद्दालक आरुणि छान्दोग्य उपनिषद् (६।१४) में गन्धार देश का उल्लेख करते दिखाये गये हैं और शतपथ-ब्राह्मण (११।४।१।१) में उन्हें उत्तरी (उदीच्य) देश में भ्रमण करते भी दिखाया गया है। इससे तक्षशिला के बुद्ध-पूर्वकालीन महत्व पर प्रकाश पड़ता है और हमको यह देखने का अवसर मिलता है कि वैदिक और बौद्ध दोनों ही परम्पराओं के अनुसार उद्दालक और उनके पुत्र श्वेतकेतु सम्भवतः तक्षशिला से सम्बद्ध थे। पाणिनि ने भी (जो गन्धार राष्ट्र के निवासी थे) अपने एक सूत्र (४।३।९३) में तक्षशिला का उल्लेख किया है। चाणक्य का नाम भी तक्षशिला विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है।

पाँचवीं और सातवी शताब्दी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने तक्षशिला की यात्रा की। फा-ह्यान ने लिखा है कि तक्षशिला के चीनी नाम (शि-श-चेंग्) का अर्थ है शिर का तक्षण। इस चीनी यात्री के अनुसार बोधिसत्व ने एक बार एक प्राणी के लिए अपना सिर काट कर यहाँ बलिदान कर दिया था, इसीलिए इसका नाम 'तक्षशिला' पड़ा।[2] दिव्यावदान (बाईसवाँ अवदान—चन्द्रप्रभबोधिसत्त्वचर्याव-दानम्) के अनुसार भी बोधिसत्व ने अपने एक पूर्व जन्म में चन्द्रप्रभ के रूप में एक

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६१-१६२।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ १२।

ब्राह्मण याचक के लिए अपना सिर यहाँ अर्पित कर दिया था, जिससे वह स्थान बाद में तक्षशिला कहलाया। यूआन् चुआङ् ने भी तक्षशिला का विस्तार से वर्णन किया है।[1] अशोक के काल मे कुणाल की आँखें तिष्यरक्षिता के द्वारा इसी नगर में निकलवाई गई थी। दिव्यावदान के कुणालावदान मे तथा अवदानकल्पलता के भी कुणालावदान मे इस तथ्य का उल्लेख है। आज शाह की ढेरी के समीप कमलि नामक स्थान पर एक स्तूप के भग्नावशिष्ट पाये जाते है, जो यह सिद्ध करते हैं कि यही कुणाल की आँखे निकलवाई गई थी। 'कमलि' मे कुणाल की पूर्ण ध्वनि भी विद्यमान है। रामायण के उत्तर-काण्ड के अनुसार भरत के पुत्र तक्ष के नाम पर इस नगर का नाम तक्षशिला पडा था। महाभारत के आदि-पर्व मे जनमेजय के नाग-यज्ञ के प्रसग मे इस राजा के द्वारा तक्षशिला की विजय का वर्णन किया गया है।

तक्षशिला की दूरी, पालि विवरणो मे, श्रावस्ती से १९२ योजन बताई गई है।[2] वाराणसी से उसकी दूरी के सम्बन्ध मे हम वाराणसी के विवरण में निवेदन कर चुके हैं। तक्षशिला नगर उत्तरापथ मार्ग द्वारा श्रावस्ती और राजगृह से मिला हुआ था। इस मार्ग का विस्तृत परिचय, उसके बीच में पडने वाले स्थानों के विवरण-सहित, हम पाँचवे परिच्छेद मे बुद्धकालीन व्यापारिक मार्गों का उल्लेख करते समय देगे। अशोक के पाँचवे शिलालेख मे कहा गया है कि उसने अपने धर्ममहामात्रों को यवन और कम्बोज लोगो के साथ-साथ गन्धार निवासियो के प्रदेश मे भी (योनकबोजगन्धालान ए वा पि) नियुक्त किया था। इससे विदित होता है कि बुद्ध-काल के समान अशोक के युग मे भी गन्धार राष्ट्र जम्बुद्वीप या भारतवर्ष का एक अग माना जाता था।

पोक्खरवती (उत्तरापथ के अन्तर्गत) गन्धार जनपद की एक प्रसिद्ध नगरी थी। सम्भवत यह गन्धार जनपद की प्राचीन राजधानी भी थी। थेरगाथा-अट्ठकथा मे इसे तपस्सु और भल्लिक का जन्म-स्थान बताया गया है। परन्तु अगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी) मे तपस्सु और भल्लिक के

---

१. देखिये वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २४०।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८७।

जन्म-स्थान का नाम असितंजन नामक नगर बताया गया है।[1] इससे पोक्खरवती को असितंजन नगर से मिलाने की प्रवृत्ति हो सकती है, परन्तु इसको इस कारण अवकाश नहीं मिल सकता क्योंकि पालि विवरणों में असितंजन को गन्धार जनपद में स्थित न बताकर उत्तरापथ के कंसभोग में स्थित और उसकी राजधानी बताया गया है।[2] कंसभोग को सूरसेन जनपद के अन्तर्गत मानें या उसे कंसभोज या कम्बोज का ही एक रूपान्तर, यह पालि परम्परा के भूगोल की एक समस्या ही है। कुछ भी हो, जहाँ तक पोक्खरवती से सम्बन्ध है, हम उसे ग्रीक इतिहासकार एरियन की प्यूकेलेओटिस और संस्कृत परम्परा की पुष्करावती या पुष्कलावती नगरी से मिला सकते हैं और इस प्रकार उसकी स्थिति को निश्चयतः आधुनिक प्रांग और छरसद्दा से मिला सकते है, जो स्वात नदी के तट पर पेशावर से १७ मील उत्तर-पूर्व में स्थित है।[3] पुष्करावती नगरी को वायु-पुराण में पुष्कर के नाम से सम्बद्ध किया गया है। "पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती।" वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड के अनुसार भरत के पुत्र पुष्कल को यहाँ का राजा बनाया गया था, जिससे इसका नाम पुष्कलावती पड़ा। इस प्रकार यह नगरी पुष्कर या पुष्कल के नाम से सम्बद्ध है। दिव्यावदान (पृष्ठ ४७९) में भी इसे उत्तरापथ जनपदों में स्थित मानते हुए इसका नाम पुष्कलावतं भी दिया गया है और कहा गया है कि इसका प्राचीन नाम उत्पलावतं (या उत्पलावती) भी था। बोधिसत्व ने यहाँ एक भूखी व्याघ्री के लिए अपना शरीर दे दिया था, ऐसा भी यहाँ कहा गया है।

कम्बोज (सं० काम्बोज) जनपद गन्धार से लगा हुआ, सम्भवतः उसके पश्चिम का, प्रदेश था। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने उसे काबुल नदी के तट पर स्थित प्रदेश माना है।[4] परन्तु हम उसे बिलोचिस्तान से लगा ईरान का प्रदेश मानना

---

१. देखिये पीछे सूरसेन जनपद का विवरण।

२. देखिये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ७९।

३. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५७-६०; फुशेर : नोट्स् औन् दि एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव गन्धार, पृष्ठ ११; मिलाइये शॉफः दि पेरीप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी, पृष्ठ १८३-८४।

४. अशोक (गायकवाड़ लैक्चर्स), पृष्ठ १६८, पद-संकेत १।

ही अधिक ठीक समझते हैं, जैसा हम आगे के विवेचन से देखेंगे। बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा मज्झिम-निकाय के अस्सलायण-सुत्तन्त से प्रकट होता है, कम्बोज और उसके साथ-साथ यवन (योन) जनपद, जिनका उल्लेख यहाँ 'योनकम्बोजेसु' के रूप में साथ-साथ किया गया है, दोनों सीमान्त में स्थित माने जाते थे और वहाँ की सामाजिक व्यवस्था में भारतीय समाज के चातुर्वर्ण्य के स्थान पर केवल दो ही वर्ण होते थे—आर्य और दास। "तो क्या मानते हो आश्वलायन! तुमने सुना है कि यवन और कम्बोज में और दूसरे भी सीमान्त देशों में दो ही वर्ण होते हैं, आर्य और दास। आर्य होकर दास हो सकता है, दास होकर आर्य हो सकता है।[1]" रायस डेविड्स् ने द्वारका को कम्बोज जनपद की राजधानी बताया है।[2] पेतवत्थु[3] में द्वारका का नाम कम्बोज के साथ लिया तो अवश्य गया है, परन्तु वहाँ उसे न तो कम्बोज की राजधानी बताया गया है और न इस जनपद में उसके होने का ही उल्लेख है। जैसा हम आगे देखेंगे, उससे हम केवल यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कम्बोज और द्वारका एक दूसरे से व्यापारिक मार्ग के द्वारा संयुक्त थे[4]। पेतवत्थु की अट्ठकथा से हम कदाचित् यह भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि द्वारका कम्बोज में थी। परन्तु यह सर्वथा निश्चित नहीं है। डा० मोतीचन्द्र ने कम्बोज को पामीर प्रदेश मानकर (उनसे पूर्व प्रो० जयचन्द्र विद्यालकार ने भी कम्बोज की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में ऐसा ही मत प्रकट किया था) द्वारका को आधुनिक दरवाज़ नामक नगर से मिलाया है, जो बदख्शां से उत्तर में स्थित है।[5] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस पहचान को सही मान कर यह कह दिया है कि

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८७।

२. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २१ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर, १९५०)।

३. पृष्ठ १८ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); देखिये आगे सुरट्ठ जनपद का विवरण भी।

४. देखिए आगे सुरट्ठ जनपद का विवेचन।

५. देखिये उनकी ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ३२-४०।

कम्बोज देश की स्थिति अब "किसी भी सन्देह की सम्भावना के परे" निश्चित हो चुकी है।[1] परन्तु यह ठीक नहीं है। सबसे पहली बात तो यह है कि डा० मोती-चन्द्र ने रायस डेविड्स् के जिस कथन से इशारा लेकर अपनी कल्पना दौड़ाई है, वह स्वयं अनिश्चित और अनुमानाश्रित है, अर्थात् यह कि द्वारका कम्बोज की राजधानी थी। यदि दरवाज को द्वारका मान भी लें तो उसके आसपास का प्रदेश कम्बोज किस प्रकार हो जायगा, जब तक कि हम द्वारका को कम्बोज में न मानें जो स्वयं रायस डेविड्स् का एक अनुमान मात्र था। इसकी अपेक्षा एक दूसरा संगत अनुमान तो डा० मललसेकर ने ही किया है। उन्होंने कहा है कि 'अपदान' में जिस कम्बोज का उल्लेख है, वह कदाचित् जातक के 'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' का देश कंसभोज (कंसभोग) ही है।[2] इस प्रकार तो अपदान का कम्बोज स्वयं यह कंसभोज या कसभोग हो जायगा जिसकी राजधानी महाकंस और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा शासित असितंजन नामक नगरी थी। तब फिर "सन्देह की सम्भावना के परे" की बात कहाँ रही? दूसरी बात यह है कि महाभारत और पुराणों की द्वारिका का तो कहना क्या, पालि की द्वारका या द्वारवती तक कृष्ण वासुदेव (कण्ह वासुदेव) के नाम के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है।[3] यदि दरवाज को हम द्वारका मानेगे तो इसकी क्या संगति होगी? घट जातक[4] के विवरण के अनुसार द्वारवती (द्वारका) के एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर पर्वत। उसकी इस स्थिति को मानने या न मानने का कोई प्रश्न ही नही उठता। यह सर्वथा निश्चित है और इसके आधार पर ही इसकी पहचान का प्रयत्न आरम्भ किया जा सकता है। डा० मललसेकर ने भी इस भौगोलिक स्थिति को

---

१. "beyond the possibility of any doubt", देखिए डा० मोतीचन्द्र की उक्त पुस्तक में उनके द्वारा लिखित 'प्राक्कथन', पृष्ठ दस।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६।

३. देखिये आगे इसी परिच्छेद में सुरट्ठ जनपद का विवरण।

४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२, ८३, ८४, ८५ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण); हिन्दी अनुवाद—चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८४।

स्वीकार किया है।[1] यदि दरवाज़ को हम द्वारका मानेंगे तो पालि के इस विवरण का क्या होगा? डा० रायस डेविड्स् ने अपने अनुमान से जो लिख दिया उसे बिना समझे-बूझे प्रामाणिक मानकर उससे निकाले गये निष्कर्ष सन्देह के परे होने की अवस्था को कभी प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि वे पूरी तरह मौलिक विवरणों से मेल न खा जायँ और उनसे पूरी संगति प्राप्त न कर लें। डा० मोतीचन्द्र को दरवाज़ को द्वारका सिद्ध करने के प्रयत्न में एक मध्ययुगीन अरबी लेखक के एक पाठ तक को गलत मानना पड़ा है।[2] हमारा अनुमान है कि यदि हम डा० मललसेकर के उपर्युक्त (कम्बोज को कंसभोज मानने सम्बन्धी) सुझाव को मान सकें तो डा० मोतीचन्द्र द्वारा उपर्युक्त अरबी लेखक के पाठ को बिना गलत माने हम उसकी समुचित व्याख्या कर सकते हैं। परन्तु इस सम्बन्धी विस्तार में यहाँ जाने की आवश्यकता प्रतीत नही होती। हम पालि की द्वारका की पहचान को दरवाज़ के रूप में अन्तिम तो मान ही नहीं सकते, उसे निश्चित रूप से गलत ही समझते हैं। इसका कारण यही है कि यह पालि के पूरे विवरणों से मेल नही खाती। द्वारका की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए हम उसे सुरट्ठ जनपद में ही मानना अधिक ठीक समझते हैं। अतः हम इस नगर का उल्लेख आगे सुरट्ठ जनपद के विवरण-प्रसंग में ही करेंगे।

पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में कम्बोज जनपद के अन्य किसी नगर का उल्लेख नही किया गया है। हाँ, यदि हम डा० मललसेकर के सुझाव पर अपदान के कम्बोज को जातक के 'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' के देश कंसभोज या कंसभोग के साथ एकाकार कर सकें[3] तो हमें कंसभोज की राजधानी असितंजन को कम्बोज का एक नगर मानना पड़ेगा। हम इस नगर का उल्लेख वस्तुतः सूरसेन और गन्धार जनपदों के प्रसंग में कर चुके है।

कम्बोज जनपद की ख्याति, सिन्धु-सोवीर और गन्धार के समान, उसके अच्छी नस्ल के वेगगामी घोड़ों के कारण, बुद्ध-काल में अधिक थी। अनेक जातक-कथाओं

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२५।

२. ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज़ इन दि महाभारत, पृष्ठ ३९।

३. देखिये उनकी डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६।

में हमें कम्बोज के सुन्दर जाति के घोड़ों (कम्बोजका अस्सं) और खच्चरों (कम्बोजके अस्सतरे) के उल्लेख मिलते हैं।[1] आचार्य बुद्धघोष ने तो इस जनपद को "अश्वों का घर" (अस्साणं आयतनं) ही कहा है।[2] कुणाल जातक से पता लगता है कि कम्बोज जनपद के लोग जंगली घोड़ों को पकड़ने में सिद्धहस्त थे। तण्डुलनालि जातक में कम्बोज के व्यापारियों द्वारा वाराणसी आदि नगरों में इन घोड़ों के बेचे जाने के भी उल्लेख हैं। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि अन्यत्र बौद्ध साहित्य तथा अन्य भारतीय साहित्य में भी कम्बोज जनपद की ख्याति घोड़ों के लिये मानी गई है। महावस्तु[3] में कम्बोज के श्रेष्ठ घोड़ों (कम्बोजक अश्ववर) का उल्लेख है। महाभारत के सभापर्व में कम्बोज राष्ट्र के घोड़ों का उल्लेख है, जिन्हें वहाँ के लोग युधिष्ठिर को भेंट करने के लिये लाये थे[4]। इसी प्रकार जैन उत्तराध्ययन-सूत्र में भी कम्बोज के वेगगामी घोड़ों का वर्णन है।[5] भूरिदत्त जातक से हमें पता लगता है कि कम्बोज जनपद के मनुष्य हिंस्र स्वभाव के थे और लूटमार का काम करते थे। इस जातक की एक गाथा में कहा गया है, "कीड़े, पतंगे, साँप, मेंढ़क, कृमि और मक्खियाँ मारने से मनुष्य शुद्ध होता है, इस प्रकार का अनार्य एवं मिथ्या धर्म कम्बोज के बहुजन मानते हैं।"[6] सातवीं शताब्दी ईसवी के चीनी यात्री यूआन् चुआङ का राजपुर (राजौरी, कश्मीर के दक्षिण) के निवासियों

---

१. देखिये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४४५; जिल्द छठी, पृष्ठ २०८; जिल्द चौथी, पृष्ठ ६५४।

२. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १२४; मिलाइये मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९९।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८५।

४. उद्धरणों के लिए देखिये मोतीचन्द्र : ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ३५, ११९।

५. जैन सूत्राज, भाग द्वितीय, पृष्ठ ४७ (सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट सीरीज़)।

६. कीटा पतंगा उरगा च भेका हन्त्वा किमिं सुज्झति मक्खिका च। एते हि धम्मा अनेरियरूपा कम्बोजकानं वितथा बहुन्नं॥

के बारे में ऐसा ही विचार था।[१] विद्वानों ने अनुसन्धान कर पता लगाया है कि प्राचीन काल में ईरान में कुछ कीड़े-मकोड़ो को मारना एक कर्तव्य माना जाता था। जातक के उपर्युक्त कथन को इस मिथ्या विश्वास के साथ मिलाते हुए डा० कुहन् ने कम्बोज को ईरान से मिलाने का प्रयत्न किया था।[२] उनकी इस मान्यता में हमें बहुत कुछ तथ्य मालूम पड़ता है। काफिरिस्तान में आज-कल भी कोमोजो, केमोजे और केमोजे जैसी जन-जातियाँ मिलती हैं, ऐसा पता एल्फिन्स्टन ने लगाया था। इनका अचूक सम्बन्ध कम्बोज जनपद से है। अतः उसकी स्थिति बिलोचिस्तान से लगे ईरान के प्रदेश से निर्विवाद रूप से मान सकते हैं। महावंस[३] के अनुसार स्थविर महारक्षित ने अशोक के काल में यवन-देश में बुद्ध-शासन का प्रचार किया था। समन्तपासादिका में भी ऐसा ही उल्लेख है। जैसा हम देख चुके हैं, अस्सलायण-सुत्तन्त में योन (यवन) और कम्बोज को एक साथ मिलाकर (योनकम्बोजेसु) प्रयोग किया गया है। अशोक के तेरहवें शिलालेख में भी ऐसा ही उल्लेख है।" योनकम्बोजेसु" (मनसेहर पाठ)। अशोक ने अपने पंचम शिलालेख मे योन (यवन) और कम्बोज के साथ-साथ गन्धार जनपद को भी अपने राज्य की सीमा में सम्मिलित प्रदेश बताया है। "योन कम्बोजगन्धा-लेसु" (धौली पाठ) तथा "योनकम्बोजगन्धारानं।" (गिरनार पाठ)। कम्बोज देश से एक सड़क द्वारका तक बुद्ध-काल में जाती थी, ऐसा पेतवत्थु[४] से स्पष्ट प्रकट होता है।

सोलह महाजनपदो के इस विवरण के बाद अब हम बुद्धकालीन भारत के

---

१. वाटर्स : औन्यूआन् चूआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २८४।

२. जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९१२, पृष्ठ २५५-२५७; मिलाइये मेकडोनल और कीथ : वैदिक इण्डेक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १३८ भी।

३. १२।५, ३९ (हिन्दी अनुवाद)।

४. पृष्ठ १८ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भवन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); देखिये आगे सुरट्ठ जनपद का विवरण भी।

कुछ अन्य छोटे जनपदों का परिचय देंगे, जिनका उल्लेख पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलता है।

थुलू, जिसे पाठ-भेद से "बुमू" भी पुकारा गया है और सुमंगलविलासिनी में जिसका पाठान्तर "खुलू" भी है, जनपद किस प्रदेश मे स्थित था, इसके सम्बन्ध में पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं मे कोई स्पष्ट सूचना नही मिलती। दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त से हमे केवल इतना मालूम होता है कि भगवान् बुद्ध एक बार सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र के साथ थुलू लोगों के उत्तरका नामक कस्बे में गये थे और अचेल कोरखत्तिय भी उस समय वही निवास कर रहा था।[1] मोटे तौर पर हम थुलू, बुमू या खुलू जनपद को मध्य देश में कोई छोटा सा प्रदेश मान सकते हैं।

पानियत्थ (पाठान्तर पादियत्थ) नामक जनपद का उल्लेख थेरगाथा-अट्ठकथा[2] मे है। इसे यहाँ स्थविर जोतिदास का जन्म-स्थान बताया गया है। इस जनपद के सम्बन्ध में अधिक सूचना प्राप्त नही है।

वंकहार (वंगहार भी पाठान्तर) जनपद मगध के दक्षिण मे स्थित था।[3] चापा की जन्मभूमि यही जनपद था। उपक आजीवक भी यहाँ कुछ दिन चापा के साथ वैवाहिक जीवन बिताते हुए रहा था।[4] आचार्य बुद्धघोष ने इस जनपद में पाई जाने वाली भयंकर मक्खियो का उल्लेख किया है।[5] वंकहार-जनपद को डा० वेणीमाधव बड़ुआ ने वर्तमान हजारीबाग जिले से मिलाया है।[6]

दसण्ण (दशार्ण) जनपद का उल्लेख दो जातक-कथाओं मे हुआ है।[7] दसण्णक

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१६-२१७।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २६४।

३. मललसेकर: डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८०१।

४. देखिये थेरीगाथा, पृष्ठ २७-२८, ७३-७४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८८।

६. गया एण्ड बुद्धगया, प्रथम भाग, पृष्ठ १०६।

७. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३३८; जिल्द छठी, पृष्ठ २३८।

जातक में दसण्ण को तीक्ष्ण धार वाली तलवारों "दसण्णकं तिखिणधारं असिं" का उल्लेख है, जो बुद्ध-काल में प्रसिद्ध मानी जाती थीं। रामायण, महाभारत और मार्कण्डेय पुराण में भी दशार्ण जनपद का उल्लेख है। "पेरिप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी"[1] (प्रथम शताब्दी ईसवी) में "दोसरीन" नामक जनपद को हाथी-दाँत के लिए प्रसिद्ध बताया गया है। सम्भवतः यह हमारा दसण्ण जनपद ही है। मेकक्रिंडल ने बताया है कि ग्रीक लोगों को भारत का "दोसरियन्स" नामक जनपद विदित था।[2] इससे तात्पर्य दशार्ण जनपद से ही है। महावस्तु[3] में दशार्ण जनपद को जम्बुद्वीप के सोलह महाजनपदों मे गिनाया गया है। कालिदास ने 'मेघदूत[4]' में दशार्ण जनपद का परिचय देते हुए उसकी राजधानी विदिशा (आधुनिक भिलसा) नामक नगरी को बताया है। "दशार्णाः. . . तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्"। इसी आधार पर विद्वानों ने दसण्ण जनपद को वर्तमान भिलसा प्रदेश से मिलाया है, जिससे सहमत होने में कोई कठिनाई नही हो सकती। वर्तमान धसान नदी, जो बुन्देलखण्ड में होकर बहती है, अपने नाम के कारण हमें दसण्ण (दशार्ण) जनपद की पूरी याद दिलाती है। अतः बुन्देलखण्ड में धसान नदी के आसपास के प्रदेश को हम बिना किसी संकोच के बुद्धकालीन दसण्ण (दशार्ण) जनपद की स्थिति मान सकते है।

पेतवत्थु में दसण्ण जनपद के प्रसिद्ध नगर एरकच्छ का उल्लेख है। "नगरं अत्थि दसण्णानं एरकच्छं ति विस्सुतं।"[5] भिक्षुणी इसिदासी (ऋषिदासी) ने भी अपने पूर्व जन्म की कथा कहते हुए "थेरीगाथा" में बताया है कि एक बार पुरुष रूप में एरकच्छ या एरककच्छ नगर में वह एक बहुत धनी स्वर्णकार बनकर उत्पन्न

---

१. पृष्ठ ४७, २५३।

२. एन्शियन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, पृष्ठ १९८।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ३४।

४. पूर्वमेघ २३-२४।

५. पेतवत्थु, पृष्ठ १६ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

हुई थी। "नगरम्हि एरककच्छे सुवण्णकारो अहं बहुतधनो"[1]। एरकच्छ या एरक-कच्छ नगर को महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आधुनिक एरच बताया है।[2] एरच झाँसी से करीब ४० मील उत्तर-पूर्व में है। अतः यह पहचान बिलकुल ठीक जान पड़ती है। विदिशा (वेदिसं) से सम्बन्धित होने के कारण दसण्ण जनपद को पालि परम्परा के अनुसार अवन्ती महाजनपद का एक अंग ही मानना ठीक होगा। बुद्धकालीन विदिशा के सम्बन्ध में हम अवन्ती के प्रसंग में विवरण दे चुके हैं।

जातक में कोटुम्बर रट्ठ का उल्लेख है और उसे क्षौम वस्त्रों (खोमकोटु-म्बराणि) के लिये प्रसिद्ध बताया गया है।[3] मिलिन्दपञ्हो में भी माधुरक जनों के साथ मिलाकर कोटुम्बर जनपद का उल्लेख किया गया है। "कोटुम्बरमाधु-रका।"[4] इसी ग्रन्थ में कोटुम्बर जनपद के सुन्दर वस्त्रों का काशिक वस्त्रों के साथ उल्लेख करते हुए सागल नगर के वर्णन-प्रसंग में कहा गया है कि वहाँ "काशी और कोटुम्बर आदि स्थानों के बने कपड़ों की बड़ी-बड़ी दूकानें थीं।"[5] प्रो० जे० प्रजुलुस्की ने कोटम्बर को औदुम्बर से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[6] यदि यह एकात्मता मान भी ली जाय, फिर भी कोटुम्बर जनपद की आधुनिक स्थिति का इससे कुछ निश्चित

---

१. थेरीगाथा, पृष्ठ ३८ (बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित देवनागरी संस्करण)।

२. देखिये मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद) के आरम्भ में संलग्न मानचित्र।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४७-५१।

४. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३२४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

५. मिलिन्द-प्रश्न, पृष्ठ २ (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद)। मूल पालि इस प्रकार है "कासिक-कोटुम्बरकादिनानाविधवत्थापणसम्पन्नं।" मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ २ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

६. जर्नल एशियाटीक, १९२६, पृष्ठ २८-४८; डा० मोतीचन्द्र ने महाभारत के सभापर्व में 'औदुम्बरा' के लिए 'कुटुम्बरा' पाठान्तर होने की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और इस प्रकार औदुम्बर लोगों को कोटुम्बर लोगों से मिलाने का एक और निश्चित आधार प्रदान किया है। देखिये उनकी 'ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत' पृष्ठ ९०, १२२।

अनुमान हमें नहीं हो सकता, क्योंकि औदुम्बर जनपद की स्थिति भी प्रायः उतनी ही अनिश्चित है। औदुम्बर जनपद को शक-सिथियन लोगों के आक्रमण के समय हम उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त में स्थित मान सकते हैं[१], मार्कण्डेय पुराण के अनुसार उसे कुरु देश मे भी रख सकते है[२] और मंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार मगध जनपद में भी,[३] जिन सबसे हमारे कोटुम्बर जनपद की आधुनिक स्थिति पर कुछ निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता। औदुम्बर लोगों का पाणिनि के गण-पाठ (४।२।५३) मे उल्लेख है, परन्तु इससे भी उनकी भौगोलिक स्थिति के बारे में कुछ निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता। महाभारत के सभापर्व मे 'औदुम्बरा दुर्विभागाः' के रूप में औदुम्बर लोगों का उल्लेख है। डा० मोतीचन्द्र ने इसका विवेचन करते हुए औदुम्बर (जिसका पाठान्तर उन्होंने "कुटुम्बरा" स्वीकार किया है) लोगों को प्रायः पठानकोट प्रदेश या काँगड़ा जिले के आसपास के प्रदेशों से सम्बद्ध किया है, जिसकी पुष्टि इन स्थानों में प्राप्त औदुम्बर लोगों के सिक्कों से भी होती है।[४] प्रथम चार निकायों में कोटुम्बर जनपद का उल्लेख नही मिलता। परन्तु विनय-पिटक के चुल्लवग्ग मे उदुम्बर नगर का उल्लेख है। विनय-पिटक का यह उदुम्बर नगर कण्णकुज्ज (कन्नौज) और सहजाति (भीटा, जिला इलाहाबाद) के बीच कही स्थित था। सोरेय्य से संकस्स, कण्णकुज्ज, उदुम्बर और अग्गलपुर होते हुए एक मार्ग बुद्ध-काल मे सहजाति तक जाता था।[५] इसी मार्ग पर उदुम्बर नगर था। इस स्थिति को देखते हुए महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का उदुम्बर नगर को कानपुर जिले मे कोई स्थान मानना[६]

---

१. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ५२८-५२९। कनिष्क के समय में औदुम्बर लोग पंजाब के काँगड़ा और होशियारपुर आदि जिलों में, सतलज और रावी के बीच के प्रदेश में, बसे हुए थे। देखिए "दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव दि इण्डियन पीपुल", जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६१। पद-संकेत ४; मिलाइये मोतीचन्द्र : ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ८८।

२, ३. देखिए लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ३५५।

४. ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ८८-९०।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४६।

ठीक ही जान पड़ता है। यदि इस उदुम्बर नगर को हम औदुम्बर या कोटुम्बर से मिलायें तो हमें कोटुम्बर या औदुम्बर जनपद को मध्य देश के अन्तर्गत पंचाल देश में मानना पड़ेगा। परन्तु एक आश्चर्यजनक और हमारे लिये अधिक समस्या पैदा करने वाली बात यह भी है कि तिब्बती परम्परा के अनुसार एक उदुम्बरा नगर रोहतक (रोहितक या रोहीतक) के उत्तर में पंजाब में भी था। मूल सर्वास्तिवादी विनयपिटक के अनुसार जीवक ने तक्षशिला से भद्रंकर, उदुम्बरिका और रोहीतक होते हुए मथुरा तक यात्रा की थी।[1] अतः हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था में कोटुम्बर या औदुम्बर जनपद की ठीक भौगोलिक स्थिति को निश्चित करना प्रायः असम्भव ही कहा जा सकता है।

वंग जनपद पूर्व देश में था। वह अंग के पूर्व और सुह्म के उत्तर-पूर्व में स्थित था। वंग जनपद को हम आधुनिक मध्य या पूर्वी बंगाल से मिला सकते हैं। प्रथम चार निकायों में वंग जनपद का उल्लेख नहीं है। महावंस में वंग जनपद के राजा सीहबाहु (सिंहबाहु) का उल्लेख है, जिसके पुत्र विजय ने लंका में जाकर प्रथम राज्य स्थापित किया।[2] अंगुत्तर-निकाय में वंग जनों (वंगा) का उल्लेख है,[3] परन्तु सोलह महाजनपदों में उनकी गिनती नहीं की गई है। दीपवंस[4] में भी वंग जनपद का उल्लेख है। मिलिन्दपञ्हो में अन्य अनेक जनपदों के साथ वंग का भी उल्लेख है और वहाँ नाविकों का नावें लेकर व्यापारार्थ जाना दिखाया गया है।[5] महानिद्देस में भी वंग जनपद का उल्लेख आया है।[6] दीपवंस[7] और महावंस[8]

---

१. देखिये गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३२-३३।

२. देखिये महावंस ६।१, १६, २०, ३१ (हिन्दी अनुवाद)।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३।

४. पृष्ठ ५४८

५. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

६. जिल्द पहली, पृष्ठ १५४।

७. पृष्ठ ८२।

८. १५।९२ (हिन्दी अनुवाद)।

में बद्धमान (वर्द्धमान) नामक नगर का उल्लेख है। इसे आधुनिक बंगाल के बर्द-वान नगर से मिलाया जा सकता है।

पूर्व या दक्षिण-पूर्व देश में सबसे अधिक महत्वपूर्ण जनपद जिसका उल्लेख निकायों मे है, सुह्म (सुम्भ) जनपद है। यह मज्झिम देस के दक्षिण-पूर्व में, अंग देश के नीचे, वंग और उक्कल के बीच, स्थित था। सुह्म जनपद और उसके प्रसिद्ध कस्बे सेतक, सेदक या देसक का भौगोलिक परिचय हम मज्झिम देस की सीमाओं का विवेचन करते समय दे चुके है। कजंगल को भी हमने सुह्म जनपद में ही माना है और उसका तथा उसके प्रसिद्ध वेणुवन[1] या सुवेणुवन और मुखेलुवन का भी, जहाँ भगवान् ने विहार किया था, परिचय हम मज्झिम देस की सीमाओं का विवेचन करते समय दे चुके हैं। प्रसिद्ध प्राचीन भारतीय बन्दरगाह तामलित्ति (ताम्रलिप्ति) को भी उसकी भौगोलिक स्थिति को देखते हुए सुह्म जनपद में ही रखना ठीक होगा।[2]

तामलित्ति (ताम्रलिप्ति) का उल्लेख विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्त-पासादिका) में है। अशोक-पुत्री भिक्षुणी संघमित्रा बोधिवृक्ष की शाखा को लेकर पाटलिपुत्र से नाव में बैठकर गंगा के मार्ग से तामलित्ति पहुँची थी और फिर वहाँ से समुद्र के मार्ग से लंका गई थी। लंका में वह जम्बुकोलपट्टन (वर्तमान सम्बल-तुरि, लंका के उत्तर में) नामक बन्दरगाह पर उतरी थी।[3] इससे ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र से गंगा नदी के मार्ग से नावों पर बैठकर तामलित्ति तक आवागमन अशोक के काल में होता था। तामलित्ति से जहाज में बैठकर यात्री सिहल के

---

१. हम देख चुके हैं कि एक वेणुवन राजगृह में भी था, जिसका एक भाग कलन्दक-निवाप कहलाता था। किम्बिला में भी एक वेणुवन था, जिसका उल्लेख हम पंचाल देश के प्रसंग में कर चुके हैं। यह तीसरा वेणुवन था, जो कजंगल में स्थित था।

२. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार लिखित "नोट्स्", पृष्ठ ७३२; मिलाइये लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २६३।

३. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ९०।

जम्बुकोलपट्टन नामक बन्दरगाह पर उतरते थे। इसी तथ्य की पुष्टि दीपवंस[1] और महावंस[2] के वर्णनों से भी होती है। महावंस के ग्यारहवें परिच्छेद में सिंहली राजा देवानंपिय तिस्स और अशोक के बीच भेंटों के आदान-प्रदान का वर्णन है। उसमें राजा देवानंपिय तिस्स के अमात्य लंका के जम्बुकोल बन्दरगाह से नाव पर बैठ कर सात दिन में तामलित्ति बन्दरगाह में पहुँचते दिखाये गय हैं और फिर वहाँ से सात दिन में उनका पाटलिपुत्र पहुँचना दिखाया गया है। इसी क्रम से उनकी वापसी यात्रा का भी वर्णन किया गया है। महावंस के उन्नीसवें परिच्छेद में तथा समन्तपासादिका[3] में जहाँ भिक्षुणी संघमित्रा का बोधिवृक्ष की डाल को लेकर गंगा के मार्ग से सात दिन में तामलित्ति पहुँचना दिखाया गया है, वहाँ यह बात भी कही गई है कि राजा अशोक उन्हे बिदाई देने के लिये स्थल-मार्ग से तामलित्ति तक आया था और इस यात्रा में भी उसे सात दिन लगे थे। इससे ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र और ताम्रलिप्ति के बीच स्थलीय मार्ग भी था। तामलित्ति से एक स्थल-मार्ग गया होता हुआ वाराणसी तक जाता था और इस प्रकार उसके सम्बन्ध को उस महत्वपूर्ण मार्ग से जोड़ता था जो राजगृह से गन्धार देश के तक्षशिला नगर तक और सम्भवतः उसके परे पश्चिमी और मध्य एशिया तक जाता था। पालि निकायों में, यहाँ तक कि जातक मे भी, तामलित्ति का निर्देश नही मिलता। परन्तु जैसा हम अंग जनपद के विवरण में देख चुके हैं, चम्पा के व्यापारियों का सुवण्णभूमि (दक्षिणी बर्मा) तक व्यापारार्थ जाने का उल्लेख वहाँ है। अतः यह निश्चित जान पड़ता है कि चम्पा के व्यापारी तामलित्ति होते हुए ही सुवण्णभूमि तक जाते होंगे। यही बात विदेह के व्यापारियो के सम्बन्ध मे कही जा सकती है, जिनका भी सुवण्णभूमि तक व्यापारार्थ जाना जातकों के आधार पर सिद्ध है। समन्तपासादिका में तामलित्ति और सुवर्णभूमि जाने का एक साथ उल्लेख किया गया है।[4]

---

१. पृष्ठ २८।

२. ११।२३-२४; ११।३८-३९; १९।६ (हिन्दी अनुवाद)।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ९०।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५, पद-संकेत १।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय व्यापारी तामलित्ति होकर ही सुवण्णभूमि जाते थे।

ऊपर पालि विवरण के आधार पर तामलित्ति बन्दरगाह का जो वर्णन दिया गया है, उससे ज्ञात होता है कि वह गंगा नदी के मुहाने पर, समुद्र के किनारे, स्थित था। आजकल बंगाल के मेदिनीपुर जिले के तमलुक नामक स्थान से तामलित्ति को मिलाया गया है।[1] तमलुक रूपनारायण नदी के मुहाने के पश्चिम की ओर स्थित है। सिलई और दलकिशोर नदियाँ मिलकर मेदिनीपुर जिले में बहती हुई रूपनारायण नदी कहलाती हैं। फा-ह्यान, यूआन् चुआङ्, इ-त्सिङ् तथा अन्य कई चीनी यात्री तामलित्ति आये थे। फा-ह्यान चम्पा से पूर्व दिशा में चलकर यहाँ पहुँचा था और उसने इसे चम्पा से ५० योजन दूर बताया है। यहाँ से एक व्यापारिक जहाज में बैठ कर दक्षिण-पश्चिम दिशा मे यात्रा करता हुआ फा-ह्यान चौदह दिन और रातों मे सिहल पहुँचा था।[2] इ-त्सिङ् कुछ दिन तक ताम्रलिप्ति मे ठहरा था और उसने इसकी दूरी नालन्दा से ६० या ७० योजन बताई है।[3] चीनी यात्री यूआन् चुआङ् "सन्-मो-त-च" अर्थात् समतट (जसौर) से ९०० 'ली' या करीब १५० मील पश्चिम मे यात्रा करते हुए ताम्रलिप्ति पहुँचा था, जिसे उसने "तन-मो-लिह्-ति" कहकर पुकारा है।[4] भारत से चीन जाने वाले यात्री अक्सर ताम्रलिप्ति से ही नाव में बैठते थे और इसी प्रकार चीन से भारत आने वाले यात्री यहाँ उतरते थे। पालि निकायों में हमें चीन के साथ भारतीय व्यापार का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु बुद्धवस में कोणागमन बुद्ध और उनके शिष्यों को सुमेध बोधिसत्व द्वारा चीनपट्ट भेट किये जाने का

---

१. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५७७; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९०।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६५।

३. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९०।

४. वहीं, पृष्ठ १८९-१९०; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५७४-५७७।

उल्लेख है। इससे लगता है कि इस ग्रन्थ की रचना या संकलन के काल तक भारत और चीन के व्यापारिक सम्बन्ध काफी विकसित हो चुके होंगे। मिलिन्दपञ्हो (ईसवी सन् के करीब) में तो चीन के साथ-साथ कई अन्य देशों के साथ भारतीय व्यापारिक सम्बन्धों की स्पष्ट बात कही गई है।[1] इतना तो निश्चित है कि ताम्रलिप्ति से भारतीय व्यापारी सुवर्णभूमि तक तो जाते ही थे, बंगाल की खाड़ी मे होते हुए ताम्रपर्णि द्वीप (श्रीलंका) तक भी उनका जाना उतना ही निश्चित है। इसी प्रकार इस बात के भी साक्ष्य हैं कि वे मलय प्रायद्वीप, पूर्वी द्वीप-समूह तथा हिन्द-चीन तक अपनी सुदृढ़ और विशाल आकार की नावें लेकर जाया करते थे। चीन के साथ भी हमारी सामुद्रिक व्यापारिक परम्परा, जिसका एक पड़ाव तामलित्ति था, काफी प्राचीन है।

हिमालय (हिमवा) के समीप, सीमा-प्रान्त में, बुद्ध-काल में कुक्कुट या कुक्कुटवती नामक नगरी थी। डा० मललसेकर का विचार है कि कुक्कुट देश का नाम था और उसकी राजधानी कुक्कुटवती कहलाती थी।[2] महाकप्पिन का जन्म कुक्कुटवती नगरी में हुआ था। जिस राज्य की यह राजधानी थी, उसका विस्तार ३०० योजन बताया गया है। श्रावस्ती के व्यापारियों से, जो कुक्कुटवती नगर में व्यापारार्थ जाया करते थे, महाकप्पिन ने बुद्ध के आविर्भाव के सम्बन्ध में सुना था और संवेगापन्न होकर वह उनके दर्शनार्थ चल पड़ा था। मार्ग में उसने क्रमशः अरवच्छा, नीलवाहना और चन्दभागा (चन्द्रभागा) नदियाँ पार की। चन्द्रभागा (चिनाब) नदी के तट पर भगवान् बुद्ध अपने ऋद्धि-बल से गये और महाकप्पिन की अगवानी की।[3] जातक[4] मे श्रावस्ती से इस स्थान की दूरी १२० योजन बताई

---

१. "सम्पन्नो नाविको पट्टने सुट्ठु कतसुंको महासमुद्दं पविसित्वा वंगं तक्कोलं चीनं सोवीरं सुरट्ठं अलसन्दं कोलपट्टनं सुवण्णभूमिं गच्छति"। पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६१४।

३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७७; मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ १७५।

४. जिल्द चौथी, पृष्ठ १८०।

गयी है। श्रावस्ती से कुक्कुटवती नगर तक व्यापारिक मार्ग था, जिस पर पैदल घूम-घूम कर माल बेचने वाले व्यापारी (जंघवाणिजा) भी आते-जाते थे। मज्झिम देस से कुक्कुटवती नगर व्यापारिक मार्ग द्वारा संयुक्त था।[१] कुक्कुटवती नगर के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वह और कुक्कुट देश अफगानिस्तान के आसपास कहीं स्थित थे। संयुत्त-निकाय के कप्पिन-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को दूर से आते कप्पिन के सम्बन्ध में भिक्षुओं से यह कहते सुनते हैं, "तुम इस गोरे, पतले, ऊँची नाक वाले भिक्षु को देखते हो? यह भिक्षु बड़ी ऋद्धि वाला, बड़े अनुभाव वाला है. . . . इसने ब्रह्मचर्य के अन्तिम फल को पा लिया है।"[२] महाकप्पिन के इस रूप-रंग और आकृति के वर्णन से भी यही प्रकट होता है कि वे उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त के ही निवासी थे। महाभारत के सभा-पर्व (अध्याय ४८) में कुक्कुर (कुक्कुराः) लोगों का उल्लेख है। यह सम्भव हो सकता है कि इन लोगों का सम्बन्ध पालि की कुक्कुटवती नगरी से रहा हो। महाभारत के 'कुक्कुर' लोगों को डा० मोतीचन्द्र ने पंजाब के खोखर लोगों से मिलाया है, जो झेलम और चिनाव नदी की घाटी में बसे है।[३] पालि विवरण के अनुसार कुक्कुट देश को चिनाव (चन्द्रभागा) नदी के काफी पश्चिम में होना चाहिये, क्योंकि इन दोनों के बीच में, जैसा हम ऊपर देख चुके है, अरवच्छा और नीलवाहना नामक अन्य दो नदियाँ महाकप्पिन ने पार की थीं। अतः हम मोटे तौर पर चन्द्रभागा नदी से लेकर झेलम नदी तक ही नही, बल्कि उसके कुछ और पश्चिम भाग को भी पालि का कुक्कुट देश मान सकते हैं।

मद्द रट्ठ (मद्र राष्ट्र) बुद्ध-काल में उत्तरापथ का एक प्रसिद्ध राष्ट्र था। वैदिक साहित्य में इस राष्ट्र का प्रभूत महत्व माना गया है। उद्दालक आरुणि ने इस राष्ट्र में शिक्षा पाई थी।[४] ऐतरेय ब्राह्मण (८।१४।३) में भी मद्र लोगों

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३१६।

३. ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ४६।

४. बृहदारण्यक उपनिषद् ३।७।१

का उल्लेख है।[१] पालि साहित्य मे विशेषतः इसकी ख्याति सुन्दर स्त्रियों के लिये अधिक है। पिप्पलि माणवक की कल्पना की स्त्री (भद्रा कापिलायिनी) मद्र देश में ही पाई गई थी। मगधराज बिम्बिसार ने भी मद्र राष्ट्र की राजकुमारी खेमा से विवाह किया था। कलिंग-बोधि-जातक में हम कलिंग देश के एक राजकुमार को मद्र देशकी राजकुमारी से विवाह करते देखते हैं। इसी प्रकार छद्दन्त जातक में वाराणसी के राजकुमार का मद्र देश की एक राजकुमारी के साथ विवाह का वर्णन है। वेस्सन्तर जातक के अनुसार सिवि देश के राजा वेस्सन्तर की रानी मद्दी (माद्री) भी मद्र राष्ट्र की राजकन्या थी। कुक्कुटवती नगर के राजा महाकप्पिन की पत्नी अनोजा भी मद्र राष्ट्र के सागल नगर की राजकन्या थी। इसी प्रकार कोसल और कुरु जनपदों के राज-परिवारों के अनेक व्यक्तियों के मद्र देश की राजकुमारियों के साथ विवाह के वर्णन हैं। सम्भवतः इसी आधार पर आचार्य बुद्धघोष ने मद्र राष्ट्र को स्त्रियों का आगार ही कहा है। 'मद्दरट्ठं नाम इत्थागारो।"[२]

मद्द रट्ठ मध्य पंजाब में, रावी और चिनाब नदियों के बीच, स्यालकोट के आसपास स्थित प्रदेश था। उसकी राजधानी सागल नामक नगरी थी, जिसे ईसवी सन् के करीब यवनराजा मिलिन्द (ग्रीक मीनाण्डर) ने अपनी राजधानी बनाया। ग्रीक इतिहासकार एरियन ने सागल नगर को "संगल" कहकर पुकारा है और तोलेमी ने उसका ग्रीक रूपान्तर 'यूथुमेदिया" दिया है। मिलिन्दपञ्हो[३] में हमें सागल नगर की व्यापारिक समृद्धि का "अत्थि योनकानं नानापुटभेदनं सागलं नाम नगरं" आदि रूप से सुन्दर काव्यमय वर्णन मिलता है, जिसमें कहा गया है कि इस नगर में काशी और कोटुम्बर जनपदों में बने नानाविध सुन्दर कपड़ों की दूकानें थीं।

---

१. वैदिक साहित्य में मद्र राष्ट्र के वर्णन के लिए देखिये मेकडोनल और कीथः वैदिक इण्डैक्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३।

२. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४२; थेरीगाथा-अट्ठकथा, पृष्ठ ६८।

३. पृष्ठ २ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); देखिये मिलिन्द-प्रश्न (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २।

इसे ईसवी सन् के करीब का ही चित्र समझना चाहिए। जातक[1] में भी हमें मद्द रट्ठ और उसकी राजधानी सागल का वर्णन मिलता है, जिसे हम बुद्ध-काल की परिस्थितियों का सूचक मान सकते हैं। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने पालि सागल को महाभारत के शाकल से मिलाया है।[2] कनिंघम ने सागल की पहचान आधुनिक स्यालकोट से की थी[3], जिससे प्रायः सभी विद्वान् सहमत हैं। तक्षशिला से मथुरा आने वाले प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग पर सागल पड़ता था। तक्षशिला से एक सीधा मार्ग सागल (स्यालकोट) होता हुआ सम्भवतः श्रावस्ती तक भी जाता था।[4]

जैसा हम पहले देख चुके हैं, मज्झिम-निकाय के अस्सलायण-सुत्तन्त में योन (सं० यवन) जनपद का उल्लेख कम्बोज जनपद के साथ एक सीमान्त (प्रत्यन्त) देश के रूप में किया गया है और कहा गया है कि वहाँ भारतीय समाज-व्यवस्था के चार वर्णों के स्थान पर दो ही वर्ण होते थे, आर्य और दास। "आर्य होकर दास हो सकता है और दास होकर आर्य हो सकता है।" (अय्यो हुत्वा दासो होति, दासो हुत्वा अय्यो होति)। पालि "योन" शब्द संस्कृत "यवन" शब्द का प्रतिरूप है जो अपने मौलिक रूप में प्राचीन पारसी शब्द "यौन" का ही रूप है और जिसका अर्थ एशिया मायनर के अन्तर्गत आयोनिया के निवासी ग्रीक से है। बाद में यह शब्द ग्रीक मात्र के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा। इसी अर्थ मे बैक्ट्रिया (बलख)-निवासी ग्रीक मीनाण्डर को मिलिन्दपञ्हो में "योनकानं राजा मिलिन्दो" कहकर पुकारा गया है। योन जनपद बुद्ध-काल में भारत के उत्तर-पश्चिम में काबुल नदी के आसपास स्थित था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में यवन प्रदेशों का पालि परम्परा को स्पष्ट ज्ञान था, यह हमें मज्झिम-निकाय के अस्सलायण-सुत्तन्त से साफ तौर पर मालूम हो जाता है। भगवान् शाक्यमुनि के उपदेशों की ओर भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त में बसे ग्रीक लोग आरम्भ से ही आकृष्ट होने लगे थे।

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ २३०; जिल्द छठी, पृष्ठ २८०।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ६४-६५।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६८६।

४. मिलाइये इस सम्बन्ध में प्रजुलुस्की का लेख, जर्नल एशियाटीक, १९२१, पृष्ठ १७-१८।

अशोक के समय में हम ग्रीक भिक्षु धर्मरक्षित (योब धम्मरक्खित) को अपरान्तक प्रदेश में धर्म-प्रचारार्थ जाते देखते हैं। अशोक ने अपने द्वितीय और त्रयोदश शिला-लेखों में सिरिया के अन्तियोकस द्वितीय और मेसीडन के एंटीगोनस गोनेटस आदि पाँच ग्रीक राजाओं का उल्लेख किया है, जिनके पास उसने भगवान् शाक्यमुनि के सन्देश को भेजा था। मिलिन्दपञ्हो में यवनराजा मिनाण्डर की राजधानी सागल का वर्णन किया गया है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। मिलिन्दपञ्हो के अनुसार राजा मिलिन्द (मिनाण्डर) का जन्म अलसन्द द्वीप (दोआब) के कल-सिगाम में हुआ था। "अत्थि भन्ते अलसन्दो नाम दीपो। ....कलसिगामो... तत्थाहं जातो ति।"[1] यहीं उसकी दूरी सागल से २०० योजन बताई गई है। अलसन्द (अलैक्जेण्डरिया) को हम आधुनिक कन्धार से मिला सकते हैं। कुछ विद्वानों ने उसे सिन्धु नदी में एक टापू भी माना है और कुछ ने काबुल से पच्चीस मील उत्तर बेगराम भी, जहाँ एक भग्न नगर के विशाल अवशेष पाये जाते हैं। कुछ विद्वान् बामियान को भी, अलसन्द बताना चाहते हैं।

सिवि (शिवि) जनपद का उल्लेख अंगुत्तर-निकाय में दी गई सोलह महा-जनपदों की सूची में नहीं है, परन्तु महावस्तु[2] में बुद्ध-ज्ञान के जिन देशों और जनपदों में वितरित किये जाने की बात कही गई है, उनमें शिवि देश सम्मिलित है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, महावस्तु की सूची में अंगुत्तर-निकाय के गन्धार और कम्बोज जनपदों का उल्लेख न होकर उनकी जगह शिवि और दशार्ण नामक दो अन्य जनपदों का उल्लेख है। शेष नाम दोनों में समान हैं। विनय-पिटक से पता लगता है कि बुद्ध-काल में सिवि देश बहुमूल्य और सुन्दर दुशालों के लिए प्रसिद्ध था। अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत ने शिवि देश का एक सुन्दर और बहुमूल्य दुशाले का जोड़ा (सिवेय्यक दुस्स) जीवक को उसके द्वारा पाण्डुरोग से उसे मुक्त किये जाने के कृतज्ञता-स्वरूप भेंट किया था। जीवक ने यह दुशाला लाकर भगवान् को अर्पित किया था।[3]

---

१. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ८५-८६ ; मिलिन्द-प्रश्न (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ १०४।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३४।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७२-२७४।

इसी प्रकार सिवि जातक में कोसल देश के राजा प्रसेनजित् के द्वारा भगवान् बुद्ध (दशवल[१]) को एक लाख मूल्य के शिवि राष्ट्र में बने कपड़े (सिवेय्यक वत्थं) के भेंट करने का उल्लेख है।

उम्मदन्ती जातक से हमें पता लगता है कि सिवियों के राज्य में सिवि-धम्म (शिवि-धर्म) नामक नैतिक विधान प्रचलित था, जिसका पालन करना सिवि राज्य का प्रत्येक नागरिक अपना कर्तव्य और सम्मान समझता था। इसी जातक में सिवि कुमार कहता है, "नेता पिता उग्गतो रट्ठपालो धम्मं सिवीनं अपचायमानो। सो धम्ममेवानुविचिन्तयन्तो तस्मा सके चित्तवसे न वत्ते।" अर्थात् "मैं शिवियों का नेता, पिता और राष्ट्रपालक हूँ। अतः शिवियों के धर्म का मान रखकर और उस धर्म का अच्छी प्रकार सोच-विचार कर मैं अपने चित्त-विकार के अधीन नहीं हूँ"। शिवि-धर्म के समान कुरु राष्ट्र के लोगों के कुरु-धर्म और वज्जियों के वज्जि-धर्म नामक नैतिक विधान प्रचलित थे, जिनका सम्मान करना ये लोग भी अपना कर्तव्य और गौरव समझते थे। इससे यह विदित होता है कि सिवियों का राज्य, इस जातक के अनुसार, एक सुसंस्कृत और नैतिक मर्यादाओं से युक्त देश था।

सिवि जातक, उम्मदन्ती जातक और वेस्सन्तर या महावेस्सन्तर जातक में

---

१. दशवल (पालि दसबल, दस बलों को धारण करने वाले) भगवान् बुद्ध का एक प्रसिद्ध उपपद है, जिसे पालि साहित्य में केवल उनके लिये प्रयोग किया गया है। सिवि-जातक के अनुसार प्रसेनजित् ने यह दुशाला भगवान् बुद्ध को ही अर्पित किया था। अतः डा० मोतीचन्द्र ने सिवि जातक का ही उद्धरण देते हुए यह जो लिखा है कि कोसल देश के राजा ने "दशवल नाम के एक व्यक्ति को" सिवि देश का वस्त्र उपहार में दिया, (प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ २९, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सं० २००७ वि०) ठीक नहीं है और भ्रामक भी है। इसी प्रकार उन्होंने अपनी पुस्तक "ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत" (पृष्ठ ९४) में भी लिखा है "....the king of Kosala is said to have presented one Dasabala with a cloth piece from Sivi"। यह उचित नहीं है। दसबल अन्य कोई साधारण व्यक्ति नहीं, बल्कि स्वयं भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध ही हैं। उनके लिए ऐसा कथन-प्रयोग उचित नहीं है।

सिवि देश और उसके राजाओं का वर्णन है। इन जातकों में सिवि देश के दो नगरों का भी उल्लेख है, जिनके नाम है अरिट्ठपुर (सिवि जातक तथा उम्मदन्ती जातक) और जेतुत्तर (वेस्सन्तर जातक)। सिवि जातक तथा उम्मदन्ती जातक में अरिट्ठपुर को सिवि राष्ट्र की राजधानी बताया गया है। दोनों ही जगह कहा गया है, "पूर्व समय में सिवि राष्ट्र के अरिट्ठपुर नगर में सिवि महाराजा राज्य करता था।" अरिट्ठपुर (सं० अरिष्टपुर) को नन्दोलाल दे ने तोलेमी के एरिष्टोबोथ्रा से मिलाकर उत्तरी पंजाब मे स्थित बताया है।[1] वोगल के मत का अनुसरण कर डा० हेमचन्द्र रायचौधरी तथा अन्य विद्वानों ने इसे पतंजलि के शिवपुर से मिलाया है और इस प्रकार इसकी पहचान झेलम और चिनाब नदियों के संगम के नीचे झंग प्रदेश के समीप शोरकोट (पश्चिमी पजाब) से की है।[2] लाहा ने नन्दोलाल दे के एक सुझाव पर अरिट्ठपुर को द्वारावती से भी मिलाने का प्रयत्न किया है।[3] परन्तु वह ठीक नही जान पड़ता।

ऋग्वेद (७।१८।७) में 'शिव' लोगों का उल्लेख है। इन्हें पालि के 'सिवि' लोगों से मिलाया जा सकता है। महाभारत के वन-पर्व में भी शिवि राष्ट्र और उसके राजा उशीनर का उल्लेख है। नन्दोलाल दे ने महाभारत के इस 'शिवि' राष्ट्र को स्वात की घाटी में स्थित बताया है।[4] बाज के लिये शिवि औशीनर के बलिदान की कथा महाभारत के वन-पर्व में आई है। फा-ह्यान ने उद्यान के दक्षिण में, जिसे आधुनिक स्वात नदी की घाटी का प्रदेश माना जा सकता

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ११।

२. रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २५२-२५३; मिलाइये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार लिखित "नोट्स्" पृष्ठ ६६९; लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८३।

३. ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८३; मिलाइये दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ १८७।

४. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ १८८।

है, इस घटना का घटित होना दिखाया है।[1] अतः महाभारत के शिवि राष्ट्र को स्वात की घाटी का प्रदेश माना जा सकता है। इस मत को इस बात से और भी समर्थन मिलता है कि शिवि औशीनर के बलिदान की घटना को दिखाने वाली एक कला-कृति भी स्वात की घाटी में मिली है। राजा उशीनर और उसके पुत्र शिवि का वर्णन कई जातक-कथाओं में भी है। सिवि जातक में तो राजा शिवि की दान-पारमिता का भी वर्णन है और उसे एक ब्राह्मण को आँख दान करते दिखाया गया है। अतः इस आधार पर हम पालि के उस सिवि देश को, जिसकी राजधानी सिवि जातक तथा उम्मदन्ती जातक में अरिट्ठपुर नामक नगरी बतायी गई है, स्वात की घाटी में स्थित मान कर उसे वर्तमान सीबी (बिलोचिस्तान) के आसपास का प्रदेश मान सकते हैं या पश्चिमी पंजाब के शोरकोट के आसपास का प्रदेश भी और उसकी राजधानी अरिट्ठपुर को, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, शिवपुर से मिला सकते हैं।

परन्तु वेस्सन्तर या महावेस्सन्तर जातक में जेतुत्तर को सिवि राज्य की राजधानी बताया गया है। "पूर्व समय में सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर में राज्य करते समय सिवि नरेश को सञ्जय नामक पुत्र का लाभ हुआ।" जेतुत्तर की गणना, जैसा हम आगे पाँचवें परिच्छेद में अभिधानप्पदीपिका के साक्ष्य पर देखेंगे, बुद्धकालीन भारत के बीस बड़े नगरों मे होती थी। वेस्सन्तर जातक में जेतुत्तर को चेत रट्ठ के मातुल नगर से तीस योजन की दूरी पर बताया गया है। नन्दोलाल दे ने जेतुत्तर को आधुनिक चित्तौड़ के ग्यारह मील उत्तर में नागरी नामक स्थान से मिलाया है।[2] अलबरुनी ने जिस जत्तररुर या जतरौर नामक स्थान का उल्लेख किया है, वह कुछ विद्वानों के अनुसार यह जेतुत्तर ही है।[3] यह सम्भव है कि बुद्ध-कालीन 'जेतुत्तर' से बिगड़ कर वर्तमान 'चित्तौड़' बना हो। चित्तौड़ के समीप

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ११-१२।

२. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ८१।

३. देखिए कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित "नोट्स्", पृष्ठ ६६९; नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ८१; लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८३।

नागरी में बहुत से ताँबे के सिक्के भी मिले हैं, जिन पर लिखा है "मझिमिकाय सिवि जनपदस"।[1] इससे प्रकट होता है कि चित्तौड़ के समीप मध्यमिका में भी सिवि लोगों का एक जनपद स्थित था। अतः जिस सिवि राज्य की राजधानी वेस्सन्तर जातक में जेतुत्तर नामक नगरी बताई गई है, उसे हम चित्तौड़ के आसपास का प्रदेश ही मानेंगे। इस प्रकार पालि विवरण के आधार पर हमें सिवि लोगों के दो निवास मानने पड़ेंगे, एक स्वात की घाटी में और दूसरा चित्तौड़ के आसपास। 'दशकुमार चरित' से जान पड़ता है कि उत्तर काल में शिवि लोगो का एक जनपद दक्षिण में कावेरी नदी के तेट पर भी स्थापित हो गया था। इससे हम, जैसा आधुनिक खोज का ढंग है, यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सिवि जाति मूलतः तो बिलोचिस्तान के आसपास स्विवि (वर्तमान सीबी) प्रदेश में ही रहती थी, परन्तु बाद में उसकी कुछ शाखाएँ वहाँ से चलकर चित्तौड़ और दक्षिण-भारत मे कावेरी नदी के तट तक बस गईं।[2] पालि साहित्य में, जैसा हम अभी स्पष्ट कर चुके है, सिवि लोगों की केवल दो शाखाओं का ही साक्ष्य हमें मिलता है, एक स्वात की घाटी के प्रान्त में और दूसरी मध्यमिका में, जिनकी राजधानियाँ क्रमशः अरिट्ठपुर और जेतुत्तर नगर थे। सिवि लोगों का वर्णन ग्रीक इतिहासकार एरियन ने "सिबोइ" नाम से किया है, जो प्रायः अलक्षेन्द्र के भारत-आक्रमण के समय से सम्बन्धित है और हमारे काल से काफी बाद का है।

वेस्सन्तर (महावेस्सन्तर) जातक में उल्लेख है कि जेतुत्तर नगर से पाँच योजन की दूरी पर स्वर्णगिरि ताल नामक पर्वत था, जहा से पाँच योजन की दूरी पर कोन्तिमार नामक नदी थी। इस नदी से पाँच योजन की दूरी पर अरंजर गिरि था, जहाँ से भी पाँच योजन की दूरी पर दुन्निविट्ठ नामक ब्राह्मण-ग्राम था। इस ग्राम से दस योजन की दूरी पर मातुल नामक नगर था जो चेत रट्ठ में था।[3] इन सब

---

१. देखिये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, जिल्द छठी, पृष्ठ १९६।

२. मिलाइये विशेषतः रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २५२-२५३; लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८२-८५।

३. जातक, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५५९ (हिन्दी अनुवाद).

स्थानों की आधुनिक पहचान करना कठिन है। हम केवल यही कह सकते हैं कि उपर्युक्त सब स्थान जेतुत्तर नगर और चेत रट्ठ के बीच मे स्थित थे।

बाहिय या बाहिक राष्ट्र, जो उत्तरापथ में था, जातक-कथाओं में वनचरों के लिए प्रसिद्ध बताया गया है। भगवान् बुद्ध के शिष्य स्थविर बाहिय दारुचीरिय बाहिय राष्ट्र के निवासी थे। मज्झिम-निकाय के बाहितिय या बाहितिक सुत्तन्त में हमें यह सूचना मिलती है कि इस देश के बने बहुमूल्य वस्त्र भारत में बुद्ध-काल में अधिक पसन्द किये जाते थे। मगधराज अजातशत्रु ने बाहित (या बाहिय) देश में बना एक सोलह हाथ लम्बा और आठ हाथ चौड़ा सुन्दर वस्त्र प्रसेनजित् को भेंट-स्वरूप भेजा था, जिसे उपर्युक्त सुत्त की सूचना के अनुसार प्रसेनजित् आनन्द को भेंट करना चाहता था।[1] अधिकतर विद्वानों की प्रवृत्ति पालि के बाहिय राष्ट्र को शतपथ-ब्राह्मण (१२।९।३।१-३) के वाह्लीक लोगों से मिलाने की है, जो मूलतः बैक्ट्रिया की राजधानी बलख के रहने वाले थे तथा भारत में चिनाब और सतलज नदियों के बीच के मैदान में बस गये थे। महाभारत के सभा-पर्व मे भी वाह्लीक लोगों (वाह्लिकैः सह) का वर्णन है और उनके प्रदेश को भी मूलतः बलख और बाद मे भारत के उत्तर-पश्चिम भाग तथा पंजाब को माना गया है।[2]

पाणिनि ने अपने दो सूत्रों यथा "वाहीकग्रामेभ्यश्च" (४।२,११७) तथा "आयुधजीविसंघाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्" (५।३,११४) में वाहीक जनपद का उल्लेख किया है, जिसे भाष्यकार पतंजलि के आधार पर अक्सर पंजाब प्रदेश में स्थित बताया जाता है। इसकी ठीक स्थिति व्यास और सतलज नदियों के बीच निश्चित की गई है। इस वाहीक से भी पालि के बाहिय या बाहिक को मिलाया जाता है।[3] भाषा-विज्ञान की दृष्टि से पालि का 'बाहिय'

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६२।

२. देखिये डा० मोतीचन्द्र : ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ९१।

३. देखिये राहुल सांकृत्यायन : मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६२, पद-संकेत १।

शब्द संस्कृत 'वाहीक' के अधिक निकट है, जब कि 'वाह्लीक' उससे कुछ दूर पड़ता है। परन्तु इस पाणिनीय वाहीक से शतपथ-ब्राह्मण और महाभारत के वाह्लीक का क्या सम्बन्ध है, यह एक समस्या है जिसके समाधान के प्रयत्न में यदि एक ओर कुछ विद्वानों ने वाहीक और वाह्लीक या वाल्हीक को एक ही प्रदेश मानकर सीधा समाधान निकाल लिया है तो दूसरी ओर कुछ लोगों ने वाह्लीकों को बैक्ट्रियन लोगों से ही मिलाने का आग्रह कर उनके प्रदेश को गन्धार और कम्बोज से परे अर्थात् अफगानिस्तान के उत्तर में ही बताने का प्रयत्न किया है। हम पालि के बाहिय राष्ट्र को कम से कम व्यास और सतलज नदियों के बीच के प्रदेश तक तो सीमित रख ही नहीं सकते, क्योंकि पालि विवरणों में बाहिय दारुचीरिय को, जो बाहिय राष्ट्र के निवासी थे, सात बार सिन्धु नदी में होकर समुद्री यात्रा करते हुए दिखाया गया है। अतः बाहिय राष्ट्र वाहीक के समान वाह्लीक में भी हो सकता है। अर्थात् सिन्धु नदी के इस पार या उस पार भी।

केक, केकक या केकय जनपद का वर्णन हमें कई जातकों मे मिलता है। यहाँ के निवासियों को 'केकका' कह कर पुकारा गया है। केकक लोगों की दो शाखाएँ थी, जिनमे से एक उत्तरापथ में बसी हुई थी और दूसरी दक्षिण के महिंसक मण्डल मे। जातक के अनुसार केकक (केकय) जनपद की राजधानी केकक (केकय) नामक नगरी ही थी और उसकी गणना जम्बुद्वीप के तीन अत्यन्त प्रसिद्ध नगरों मे की जाती थी। शेष दो नगर थे उत्तर-पंचाल और इन्दपत्त।[1] महिसक मण्डल के अन्तर्गत केककों के राजा अज्जुन सहस्सबाहु (अर्जुन सहस्रबाहु-

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २१३; रामायण (२।६७।७ "केकयेषु··· पुरे राजगृहे रम्ये" तथा वहीं "गिरिव्रजं पुरवरं·····।" २।६८।२२) में केकय जनपद की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह नामक नगरी बताई गई है जिसे कनिंघम ने झेलम नदी के समीप स्थित गिर्जाक या जलालपुर नामक स्थान से मिलाया है। एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १८८। यह नगरी इस प्रकार अपने ही नाम वाली मगध की प्रसिद्ध राजधानी से पृथक् थी, जिसे, जैसा हम पहले देख चुके हैं, "मगधानं गिरिब्बजो" कहकर पालि साहित्य में

कार्तवीर्य अर्जुन) का वर्णन सरभंग जातक और संकिच्च जातक में है। उत्तरापथ का केकक (केकय) जनपद सम्भवतः ब्यास और सतलज नदियों के बीच में स्थित था।

कोकनद जनपद का वर्णन एक जातक-कथा में आया है और यहाँ उसे वीणा बनाने की कारीगरी के लिए प्रसिद्ध बताया गया है।[1] पार्जिटर ने इस कोकनद जनपद को मार्कण्डेय पुराण के कोकंकन जनपद से मिलाया है, जो उत्तर-पश्चिम भारत में स्थित था। यूआन् चुआङ ने "फ-ल-न" (बन्नू) की पश्चिमी सीमा पर स्थित "कि-क्यङ्ग्-न" नामक स्थान की यात्रा की थी।[2] सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने इस "कि-क्यङ्ग्-न" नामक स्थान को मार्कण्डेय पुराण के उपर्युक्त कोकंकन जनपद से मिलाया है।[3] इस प्रकार जातक के कोकनद जनपद, मार्कण्डेय पुराण के कोकंकन और यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण में निर्दिष्ट "कि-क्यङ्ग्-न" को एक स्थान माना जा सकता है। स्टीन ने "कि-क्यङ्ग्-न" को वर्तमान वज़ीरि-स्तान से मिलाया था। अतः यही स्थिति इस आधार पर पालि के कोकनद जनपद की भी होगी।

उद्दियान (सं० उद्यान) जनपद का उल्लेख पालि साहित्य में केवल प्रासंगिक रूप से आया है। महावाणिज जातक में उद्दियान के कम्बलों का उल्लेख है। "उद्दियानि च कम्बला।" यह उद्दियान जनपद वस्तुतः संस्कृत का उद्यान प्रदेश ही है। स्वात की घाटी से लेकर पूर्व में सिन्धु नदी तक यह प्रदेश फैला था। 'अश्वक' प्रदेश भी सम्भवतः यही कहलाता था और ग्रीक

पुकारा गया है। यूआन् चुआङ् ने एक तीसरी राजगृह का भी उल्लेख किया है, जो बलख (पो-हो) में स्थित थी। देखिये बील : बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ ४४।

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २८१-२९०।

२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ९९; मिलाइये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २६२।

३. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में उनके द्वारा लिखित टिप्पणियाँ, पृष्ठ ६७९।

लोगों ने इसी का "अस्सकेनस" या "अस्सकेनोइ" नाम से उल्लेख किया है। फा-ह्यान ने उद्यान प्रदेश का उल्लेख करते हुए उसे उत्तर भारत का एक अंग बताया है। इस चीनी यात्री ने यहाँ ५०० संघाराम देखे थे, जहाँ हीनयान सम्प्रदाय के भिक्षु निवास करते थे। फा-ह्यान ने उद्यान प्रदेश में भगवान् बुद्ध के जाने का उल्लेख किया है। उसने यहाँ पर एक पत्थर भी देखा था, जिस पर भगवान् बुद्ध ने अपने वस्त्र सुखाये थे। बुद्ध ने अपने चरण-चिह्न भी, फा-ह्यान के कथनानुसार इस प्रदेश में छोड़े थे।[१] यूआन्-चुआङ ने भी उद्यान प्रदेश की यात्रा की और उस समय यहाँ महायान धर्म का आधिक्य देखा।[२]

उत्तरकालीन बौद्ध तान्त्रिक धर्म में 'ओडियान' नामक स्थान या प्रदेश की ख्याति एक सिद्ध-पीठ के रूप में बहुत अधिक रही है। परन्तु उसकी स्थिति के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। यदि यह तान्त्रिक 'ओडियान' हमारी पालि का 'उद्दियान' और संस्कृत का उद्यान ही हो, तब तो उसका स्वात की घाटी में होना अनिवार्य है। परन्तु अन्य कारणों को ध्यान में रखते हुए (जिनका यहाँ प्रसंग नहीं है) कुछ विद्वानों ने उसे उडीसा, बंगाल या असम में भी स्थित माना है।

सिन्धु और सोवीर (सं० सौवीर) देश बुद्ध-काल में, विशेषतः व्यापार की दृष्टि से, अत्यन्त महत्वपूर्ण जनपद थे। "सिन्धवा" जनों का उल्लेख अपदान में है। सारत्थप्पकासिनी[३] में सिन्धु और सोधिक (सोवीर) देश के राजा सेरि का उल्लेख किया गया है। सिन्धु देश को जातक में अच्छी नस्ल के तेज दौड़ने वाले घोड़ों के लिये विशेषतः प्रसिद्ध बताया गया है।[४] सिन्धु नदी की ख्याति भी अच्छी नस्ल के घोड़ों के लिए थी, यह हम द्वितीय परिच्छेद में देख चुके है।

सिन्धु देश के ऊपर सोवीर देश स्थित था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त

---

१. गाइल्स : दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ११।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २२५।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ९०।

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १२४, १७८, १८१; जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१, २८७; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २५९-२६०; जिल्द छठी, पृष्ठ २६५।

में सोवीर देश का उल्लेख है और उसकी राजधानी रोरुक नामक नगरी बताई गई है। यहीं कहा गया है कि राजा रेणु के ब्राह्मण मंत्री महागोविन्द ने इस नगर की स्थापना की थी। आदित्त-जातक में भी सोवीर राष्ट्र और उसकी राजधानी रोरुव (दीघ-निकाय का रोरुक) का उल्लेख है।[१] दिव्यावदान[२] में भी रोरुक नगर का उल्लेख है, जिसे हम जातक के रोरुव और महागोविन्द-सुत्त के रोरुक से मिला सकते हैं। भगवान् बुद्ध के शिष्य स्थविर तिस्स, जिनकी गाथाएँ थेरगाथा में सन्निहित हैं, रोरुक के राजा के पुत्र थे। सोवीर प्रदेश को, जैसा हम पहले देख चुके हैं, सिन्धु और झेलम नदियों के बीच का या सिन्धु नदी के पूर्व में मुल्तान तक फैला हुआ प्रदेश मान सकते है।[३] कनिंघम ने उसे सोफिर और ओफिर से मिलाते हुए गुजरात के वद्रि या इडर नामक जिले से मिलाया था[४], जो अब प्रामाणिक नहीं माना जाता। इसका कारण यह है कि कनिंघम ने पालि साहित्य के रोरुक नगर का कुछ ध्यान अपनी उक्त पहचान को करते समय नही रक्खा था और वैसे भी सोवीर देश को गुजरात में रखने की कोई संगति नही है। बाद की खोजों से यह निश्चित जान पड़ता है कि बुद्धकालीन रोरुव या रोरुक नगर आधुनिक रोरा या रोरी गाँव ही है, जो सिन्धु देश के उत्तरी भाग मे स्थित है। इस नगर का उल्लेख स्वयं कनिंघम ने यूआन् चुआङ् द्वारा निर्दिष्ट "पि-चेन्-पी-पु-लो" या अभिजनपुर के प्रसंग में किया है।[५]

सुरट्ठ (सुराष्ट्र) जनपद का उल्लेख अपदान[६] में है। इन्द्रिय जातक में भी

---

१. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७०।

२. पृष्ठ ५४४-५४५।

३. देखिये दूसरे परिच्छेद में उत्तरापथ का विवेचन।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५६१।

५. देखिये उनकी "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया", पृष्ठ २९४-२९७; मिलाइये वाटर्सःऔन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५३।

६. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५९।

उसका निर्देश किया गया है। यहाँ उसकी सीमा पर सातोडिका नामक नदी बहती दिखाई गई है। सुरट्ठ को हम आधुनिक काठियावाड़ से मिला सकते हैं, यद्यपि इसका नाम "सुट्ठ" केवल "सूरत" के रूप में, जो उसका अरबी प्रतिरूप है, आज बच गया है। सुरट्ठ जनपद का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह भरुकच्छ था, जो काठियावाड़ का आधुनिक भड़ौंच ही है। सुसन्धि जातक में भरुकच्छ बन्दरगाह का उल्लेख है और सग्ग की वाराणसी से भरुकच्छ तक की यात्रा का वर्णन किया गया है। मिलिन्द-पञ्हो के अनुमानपञ्हो में भी भारुकच्छ (भरुकच्छ) का उल्लेख आया है। भरुकच्छ के व्यापारियों का समुद्री मार्ग से माल लेकर सुवण्णभूमि (दक्षिणी बर्मा) तक व्यापारार्थ जाना भी जातक (जिल्द तीसरी, पृष्ठ १८८) में वर्णित है। पश्चिम में यहाँ के व्यापारी फ़ारिस की खाड़ी तक जाते थे। स्थलीय मार्ग के द्वारा भरुकच्छ माहिष्मती से जुड़ा हुआ था। "पेरीप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी"[१] में भरुकच्छ को बेरीगाजा कह कर पुकारा गया है और ग्रीक लोगों को यह बरीगाज़ा तथा बरगोज़ा के नामों से विदित था।[२] भरु जातक के अनुसार भरुकच्छ भरु नामक जनपद में स्थित था। दिव्यावदान[३] में भरु जनपद को 'भिरु' और भरुकच्छ को 'भिरुक' या 'भिरुकच्छ' कह कर पुकारा गया है। 'भरु' जनपद को हमें सुरट्ठ के अन्तर्गत ही मानना पड़ेगा। भरुकच्छ नगर में बुद्ध-धर्म का प्रचार भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भी काफी हो गया प्रतीत होता है। स्थविर मलित-वम्भ, जिनके उद्गार थेरगाथा में सन्निहित हैं, भरुकच्छ के एक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे।[४] इसी प्रकार एक अन्य स्थविर वड्ढ भी भरुकच्छ के एक साधारण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनकी माता बचपन मे ही उन्हें परिवार वालों को सौंप कर भिक्षुणी हो गई थी।[५] सुरट्ठ मुख्यतः एक व्यापारिक देश था, जिसकी समृद्धि का

---

१. पृष्ठ ४०, २८७।

२. मेकक्रिण्डल : इण्डिया ऐंज डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, पृष्ठ ७८।

३. पृष्ठ ५७६।

४. थेरगाथा, पृष्ठ ४५ (हिन्दी अनुवाद)।

५. वहीं, पृष्ठ १०६।

वर्णन जातक[1] और अपदान[2] में किया गया है। तोलेमी को सुरट्ठ जनपद सिरस्त्रीन के नाम से विदित था और ग्रीक इतिहासकार स्ट्रेबो ने उसे सरोस्टोस कह कर पुकारा है। यूआन् चुआङ् ने सुरट्ठ को "सु-ल-च" कह कर पुकारा है और उसके विस्तार को ४००० 'ली' अर्थात् करीब ६६७ मील बताया है।[3] जातक में द्वारका[4] या द्वारवती[5] नगरी का उल्लेख है। इसे हमें सुरट्ठ या सौराष्ट्र जनपद का ही एक नगर मानना चाहिए।

घट जातक के अनुसार द्वारवती (द्वारका) नगरी के एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर पर्वत।[6] इन दोनों के बीच यह सुदृढ नगरी बसी हुई थी। आज भी द्वारिका कस्बा पश्चिमी समुद्र के किनारे बसा हुआ है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि जातक में द्वारका को कृष्ण वासुदेव के (कण्हस्स वासुदेवस्स) निवास से सम्बद्ध किया गया है। कहा गया है कि एक बार कृष्ण वासुदेव जब द्वारवती से अपने उद्यान की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्होंने जम्बावती नामक चाण्डाली को देखा और उससे विवाह कर लिया। बाद में उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम सिवि रक्खा गया और वह अपने पिता की मृत्यु के बाद द्वारवती या द्वारका का राजा हुआ।[7] वस्तुतः पालि की द्वारका या द्वारवती को देवगब्भा और उपसागर के दस पुत्रों ने बसाया था, जिनमें से दो के नाम वासुदेव और बलदेव थे। देवगब्भा और उपसागर के दस पुत्र देवगब्भा की सेविका नन्दगोपा और उसके पति अन्धकवेण्हु के पुत्रों के रूप में पाले गये थे, अतः उनका नाम

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५९।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४८-२४९; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ३७३।

४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८५।

५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२, ८३।

६. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२, ८३, ८४, ८५ (पालि टैक्स्ट सोसायटी संस्करण); हिन्दी अनुवाद—चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८४।

७. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४२१।

'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' पड़ गया था। वासुदेव और बलदेव, उन्हीं दस पुत्रों में से थे जिन्होंने द्वारवती को जीत कर उसे अपनी राजधानी बनाया।[1] अतः यह निश्चित जान पड़ता है कि काठियावाड़ के पश्चिमी किनारे पर स्थित आधुनिक द्वारिका नगरी ही पालि की 'द्वारका' या 'द्वारवती' है। महाभारत और पुराणों की 'द्वारिका' या 'द्वारावती' भी निश्चयतः यही नगरी है। पुराणों के वर्णनानुसार कृष्ण जब मगध के राजा जरासन्ध को पराजित न कर सके तो वे मथुरा छोड़कर यहाँ चले आये थे, और अपना राज्य स्थापित किया था। इसी कहानी का एक विकृत या परिवर्तित रूप हमें जातक में मिलता है। पेतवत्थु[2] में कहा गया है "यस्स अत्थाय गच्छाम कम्बोजं धनहारका... यानं आरोपयित्वान खिप्पं गच्छाम द्वारकं।' इससे स्पष्ट विदित होता है कि द्वारका नगरी और कम्बोज राष्ट्र व्यापारिक मार्ग के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए थे। पेतवत्थु की अट्ठकथा[3] से यह भी ध्वनित होता है कि द्वारवती कम्बोज राष्ट्र की ही एक नगरी थी। मललसेकर ने सुझाव दिया है कि पेतवत्थु और उसकी अट्ठकथा में 'कम्बोज' से तात्पर्य कंसभोज से है, जो 'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' का देश था।[4] कंसभोज या कंसभोग के सम्बन्ध में हम घट जातक में देखते ही हैं कि वह उत्तरापथ का एक भाग था जिसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी थी और जहाँ महाकंस नामक राजा राज्य करता था।[5] पालि विवरणों की संगति को देखते हुए हमें डा० मललसेकर का सुझाव युक्तियुक्त जान पड़ता है। कम्बोज में द्वारका के होने पर अनावश्यक बल दे कर और कम्बोज को पामीर प्रदेश में मान कर दरवाज़ के रूप में द्वारका को खोजने की जो परिकल्पना डा० मोतीचन्द्र ने की है, उसका निराकरण हम पहले कर ही चुके हैं।

ऊपर हम जातक के आधार पर कह चुके हैं कि एक बार जब कृष्ण

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ७९-८२।

२. पृष्ठ १८ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

३. पृष्ठ ११३।

४. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६।

५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ७९।

वासुदेव द्वारवती से अपने उद्यान की ओर जा रहे थे, तो मार्ग में उन्होंने जम्बावती नामक स्त्री को देखा और उससे विवाह कर लिया। वर्तमान द्वारिका कस्बे से आगे २० मील की दूरी पर कच्छ की खाड़ी में एक छोटा सा टापू है। उसमें एक दूसरी द्वारिका बसी हुई है, जिसे बेट द्वारिका कहते हैं। अनुश्रुति है कि यहाँ भगवान् कृष्ण सैर करने के लिये आया करते थे। निश्चय ही जिस उद्यान का जातक में उल्लेख है, वह यह बेट द्वारिका ही हो सकती है। यह एक सात मील लम्बा पथरीला टापू है और इसकी प्राकृतिक शोभा रमणीय है। यह एक उल्लेखनीय और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि द्वारिका और बेट द्वारिका दोनों नगरों में राधा, रुक्मिणी और सत्यभामा के साथ-साथ जामवन्ती के भी मन्दिर पाये जाते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि यह जामवन्ती पालि की जम्बावती ही है।

लाल (लाट) देश का उल्लेख महावंस[1] में है। इसे मध्य और दक्षिण गुजरात से मिलाया गया है। महावंस के वर्णनानुसार लाल देश का एक नगर सिंहपुर (सीहपुर) नामक था, जहाँ से विजय ने सिंहल के लिये प्रस्थान किया था।[2]

चेतिय जातक में चेदि नरेश उपचर या अपचर के पाँच पुत्रों में से एक के द्वारा सीहपुर नामक नगर के बसाये जाने का उल्लेख है। इस सीहपुर (सिंहपुर) को लाल देश के उपर्युक्त सीहपुर नामक नगर से मिलाया गया है।[3] यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि एक सीहपुर नामक नगर उत्तरी पंजाब में भी था, जिसकी यात्रा यूआन् चुआङ् ने की थी और जिसका नाम उसने "सिंग्-हु-लो" दिया है तथा तक्षशिला से जिसकी दूरी ७०० 'ली' या करीब ११७ मील बताई है।[4] चेतिय जातक में सीहपुर को सोत्थिवती नगर से पश्चिम दिशा में स्थित बताया गया है।

---

१. ६।५ (हिन्दी अनुवाद)।

२. महावंस ६।३५; ८।६-७ (हिन्दी अनुवाद)।

३. हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १३०, पद-संकेत २।

४. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङ स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २४८; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १४४।

अतः उसका पश्चिमी प्रदेश में होना प्रायः निश्चित है और उसे हम पूर्वोक्त दोनों नगरों में से किसी से मिला सकते हैं।

सूनापरान्त (पालि सुनापरन्त) बुद्ध-काल में एक सुविदित जनपद था। यह अपरान्त (पालि अपरन्त) प्रदेश का एक अंग था, या कुछ अवस्थाओं में इसे उसके साथ एकाकार भी किया जा सकता है। भिक्षु पूर्ण सूनापरान्त जनपद के सुप्पारक नगर के निवासी थे। पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर व्यापारार्थ श्रावस्ती आये थे। परन्तु भगवान् बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर भिक्षु हो गये। बाद में शास्ता से आदेश लेकर अपने देश में धर्म-प्रचारार्थ गये। सूनापरान्त जनपद के मनुष्य क्रोधी और प्रचण्ड स्वभाव के होते थे, ऐसा हमें मज्झिम-निकाय के पुण्णोवाद-सुत्तन्त और संयुत्त-निकाय के पुण्ण-सुत्त से विदित होता है। स्थविर पूर्ण की सहिष्णुता की पूर्ण परीक्षा लेकर ही भगवान् ने उन्हें सूनापरान्त जनपद में धर्म-प्रचारार्थ जाने की अनुमति दी। अपनी मातृभूमि सूनापरान्त में जाकर स्थविर पूर्ण ने मंकुलकाराम नामक विहार में निवास करते हुए धर्म-प्रचार का कार्य किया। सूनापरान्त जनपद के समुद्र-गिरि विहार, मातुगिरि और पदचैत्य जैसे कई स्थानों के और सच्चवन्ध या सच्चबद्ध पब्बत के नाम संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा (सारत्थप्पकासिनी) में दिये गये हैं। हम पहले, सारत्थप्पकासिनी के साक्ष्य पर, देख चुके हैं कि स्थविर पूर्ण के निमन्त्रण पर भगवान् बुद्ध मंकुलकाराम गये थे, परन्तु केवल सात दिन तक वहाँ ठहर सके थे। मंकुलकाराम को मंकुल पर्वत से, जहाँ भगवान् ने अपनी छठी वर्षा बिताई थी, मिलाना कहाँ तक ठीक है, इसकी मीमांसा हम द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल का विवेचन करते समय कर चुके है। यद्यपि मललसेकर द्वारा मकुलकाराम को मंकुल पर्वत मानने के हम काफी हद तक पक्ष में है और इस प्रकार इस पर्वत को हम सूनापरान्त जनपद में रक्खेंगे, परन्तु दे ने मंकुल या मकुल पर्वत को जो वर्तमान कलुहा पहाड़ (बुद्ध-गया से २६ मील दक्षिण में, बिहार के हजारीबाग जिले में) से मिलाया है,[1] वह भी काफी विचारोत्तेजक और अधिक सम्भाव्य भी है और इस ओर अधिक खोज़ की प्रेरणा देने वाला है। मंकुलकाराम के समीप ही

---

१. ज्योग्रेफीकल-डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ १२१।

व्यापारियों का एक गाँव था, जहाँ स्थविर पुण्ण के छोटे भाई चुल्ल पुण्ण रहते थे। इस गाँव के निवासियों ने एक 'गन्धकुटी' और 'चन्दनशाला' बनवाई थी जहाँ, सारत्थप्पकासिनी के अनुसार, भगवान् मंकुलकाराम जाते समय ठहरे थे। स्थविर इसिदिन्न की जन्मभूमि भी सूनापरान्त जनपद बताया गया है।

सूनापरान्त जनपद की राजधानी सुप्पारक नामक नगरी थी, जिसे आधुनिक सोपारा से, जो बम्बई के ३७ मील उत्तर में जिला ठाणा में है, मिलाया गया है। 'उदान' के बोधि-वग्ग में हम बाहिय दारुचीरिय नामक साधु को सुप्पारक तीर्थ में वास करते देखते है। सुप्पारक बुद्धकालीन भारत का एक अत्यन्त प्रसिद्ध बन्दरगाह था। दीपवंस[1] और महावंस[2] में इस बन्दरगाह का उल्लेख है और इसी प्रकर उदान[3] में भी। धम्मपदट्ठकथा[4] मे सुप्पारक की दूरी श्रावस्ती से १२० योजन बताई गई है। पालि साहित्य की परम्परा में भगवान् बुद्ध के सुप्पारक जाने का कोई उल्लेख नही है। परन्तु महाकवि अश्वघोष ने कहा है कि भगवान् बुद्ध ने शूर्पारक नगर में जाकर वहाँ के स्तवकर्णी नामक श्रेष्ठी को उपदेश दिया था जिसने मुनिवर (बुद्ध) के लिये एक गगनचुम्बी चन्दन-विहार बनवाया।[5] सूनापरान्त जनपद को महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने वर्तमान थाना (ठाणा) और सूरत के जिलों तथा उनके आसपास के प्रदेश से मिलाया है,[6] जो ठीक जान पड़ता है। सासनवंस (जो उन्नीसवी शताब्दी मे बर्मा में लिखी गई रचना है) के आधार पर बर्मी लोग सूनापरान्त जनपद को अपने देश में स्थित इरावती नदी के आसपास पगान के समीप का प्रदेश मानते है,[7] जिसके लिये पूर्वकालीन पालि परम्परा में कोई

---

१. पृष्ठ ५५।

२. ६।४६ (हिन्दी अनुवाद)।

३. पृष्ठ ११ (हिन्दी अनुवाद)।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २१३।

५. बुद्ध-चरित २१।२२-२३।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३७६, पद-संकेत ३; पृष्ठ ५४३।

७. देखिये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२११।

आधार प्राप्त करना कठिन है। हाँ, यह सम्भव है कि भारतीय प्रदेश (सूनापरान्त) के नाम पर ही पगान का यह नाम प्राचीन काल में रक्खा गया हो।

महारट्ठ (महाराष्ट्र प्रदेश) में स्थविर महाधर्मरक्षित को धर्म-प्रचारार्थ भेजा गया था।[1] पालि के महारट्ठ को हम आधुनिक महाराष्ट्र से मिला सकते हैं। पालि निकायों में महारट्ठ के सम्बन्ध में कोई अधिक महत्वपूर्ण सूचना नहीं दी गई है।

महिंसक राष्ट्र का उल्लेख कई जातक-कथाओं में है।[2] वहाँ संकुल नामक नगर को उसकी राजधानी बताया गया है। जातक में महिंसक राष्ट्र को मगध राष्ट्र से अलग देश बताया गया है। जैसा हम दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल में देख चुके हैं, कण्णपेण्णा या कण्णवेण्णा नदी इस प्रदेश में होकर बहती थी और इसी में चन्दक नामक पर्वत था। महिंसक राष्ट्र की आधुनिक पहचान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इसे माहिष्मती से मिलाया है। सम्भवतः इसी आधार पर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने महिष-मण्डल की आधुनिक सीमाओं का उल्लेख करते हुए उसके बारे में लिखा है, "महेश्वर (इन्दौर राज्य) राज्य से ऊपर का प्रान्त, जो कि विन्ध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ियों के बीच में पड़ता है।"[3] हम महिंसक राष्ट्र को माहिष्मती से इसलिये नहीं मिला सकते कि जातक के विवरण में उसके अन्दर बहने वाली नदी का नाम कण्णपेण्णा या कण्णवेण्णा बताया गया है, न कि नर्मदा। माहिष्मती नर्मदा नदी पर स्थित थी। कुछ दूसरे विद्वान् महिंसक राष्ट्र को मैसूर या खानदेश से मिलाना अधिक उपयुक्त समझते हैं। परन्तु इसके लिये भी कोई ठोस कारण नहीं दिया जाता। वस्तुतः जब तक कण्णपेण्णा नदी और चन्दक पर्वत की आधुनिक स्थितियों की पूरी जाँच-पड़ताल नहीं हो जाती, तब तक पालि के महिंसक मण्डल की सीमा और विस्तार के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका)[4] के अनुसार तृतीय

---

१. महावंस १२।५ (हिन्दी अनुवाद)।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६२, ३३७।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३७, पद-संकेत २।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ६३।

बौद्ध संगीति के बाद महादेव स्थविर को महिसक मण्डल में धर्म-प्रचारार्थ भेजा गया था। महावंस[1] और दीपवंस[2] में भी इस बात का उल्लेख है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, महिसक राष्ट्र की राजधानी सकुल नामक नगरी थी, जिसे एक जातक-कथा में शिकारियों के एक गाँव के पास स्थित बताया गया है। मानुसिय झील इसके पास ही थी।[3] इस राष्ट्र में जाड़े का मौसम अधिकतर रहता था।

वनवास या वनवासि प्रदेश में, समन्तपासादिका[4] के अनुसार, स्थविर रक्षित को धर्म-प्रचारार्थ भेजा गया था। महावंस[5] और दीपवंस[6] में भी इस घटना का उल्लेख है। वनवास या वनवासि प्रदेश को हम आधुनिक उत्तरी कन्नारा के अन्दर मान सकते हैं, क्योंकि यहाँ आज इस नाम का एक पुराना गाँव भी है। इस स्थान पर कदम्बवंशीय कीर्तिवर्मा के दो अभिलेख भी मिले हैं।[7] सासनवंस[8] में, जो उन्नीसवीं शताब्दी में बर्मा में लिखित एक रचना है, वनवासि देश को दक्षिण बर्मा में प्रोम के आसपास स्थित बताया गया है। निश्चयतः समन्तपासादिका और पूर्ववर्ती वंस-साहित्य के वनवास या वनवासि प्रदेश से इसकी कोई संगति नहीं है। परन्तु, जैसा हम सूनापरान्त के सम्बन्ध में कह चुके हैं, यह बहुत सम्भव है कि भारतीय वनवास प्रदेश की अनुस्मृति में बर्मा के एक प्रदेश का प्राचीन काल में यह नाम रक्खा गया हो। श्री लंका, बर्मा, और थाई देश तक में यह प्रवृत्ति काफी मात्रा में पाई जाती है। वीरपुरुषदत्त के नागार्जुनीकोण्ड-अभिलेखों में वनवासि प्रदेश का उल्लेख है। इसे हम पालि के वनवास या वनवासि से अभिन्न मान सकते हैं, क्योंकि दोनों का ही सम्बन्ध दक्षिण भारत से है।

---

१. १२।३ (हिन्दी अनुवाद)।
२. ८।५
३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३३७-३३८।
४. जिल्द पहली, पृष्ठ ६३, ६६।
५. १२।४ (हिन्दी अनुवाद), मिलाइये वहीं १२।३१ भी।
६. ८।६।
७. एपिग्रेफिया इण्डिका, जिल्द सोलहवीं, पृष्ठ ३५३।
८. पृष्ठ १२।

हम पहले देख चुके हैं कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में गोदावरी के तट पर दक्षिणापथ में अस्सक और अलक नामक दो राज्य थे, जो सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार अन्धक (आन्ध्र) राज्य कहलाते थे। इनमें अलक (या मूलक) राज्य गोदावरी के ऊपर की ओर था और अस्सक उसके दक्षिण की ओर। गोदावरी दोनों राज्यों की सीमा में होकर बहती थी। इनके अतिरिक्त सेरिवाणिज जातक में सेरिव रट्ठ का उल्लेख है[१], जिसे डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने श्रीराज्य या मैसूर के गंगा-राज्य से मिलाने का प्रस्ताव किया है[२]। जातक के विवरण के अनुसार इस राज्य के व्यापारी तेलबाह नामक नदी को पार करने के बाद उसके दूसरे किनारे पर स्थित अन्धपुर नामक नगर में पहुँचे थे।[३] दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन करते समय हम देख चुके है कि तेलवाह नदी को तेल, तेलनगिरि या तुगभद्रा-कृष्णा से मिलाया गया है और इस प्रकार प्रत्येक दशा में हमें अन्धपुर को आन्ध्र राज्य में मानना पड़ेगा[४]। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने अन्धपुर को आधुनिक विजयवाडा (बैज़वाड़ा) या उसके किसी पड़ोसी नगर से मिलाने का प्रस्ताव किया है[५]। अन्धक और दमिल (तमिल) लोगों की भाषा को सुमंगलविलासिनी[६] में "मिलक्खाणं भासा" (म्लेच्छों की भाषा) कहकर पुकारा गया है। इससे पता चलता है कि इन लोगों को पालि परम्परा विदेशी या अपरिचित भाषा बोलने वाला समझती थी और उसे इनके सम्बन्ध में अधिक प्रत्यक्ष ज्ञान नही था।

जैसा हम पहले देख चुके है, "दमिल विसय" को पेतवत्थु की अट्ठकथा में

---

१. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९२।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

४. परन्तु डा० लाहा ने "ज्योग्रफी ऑव अर्ली बुद्धिज़म", पृष्ठ २४ में तथा भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने "बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय", पृष्ठ ६ में इस नगर को मज्झिम-देस के अन्तर्गत रक्खा है, जिसे चिन्त्य ही कहा जा सकता है।

५. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९२।

६. जिल्द पहली, पृष्ठ १७६।

दक्षिणापथ में बताया गया है। "अपदान"[1] में भी दमिल राष्ट्र का उल्लेख है। अकित्ति जातक में दमिल रट्ठ को कावीरपट्टन के आसपास का राज्य बताया गया है। धम्मपदट्ठकथा[2] में भी इस तथ्य की पुष्टि है। कावीरपट्टन दमिल रट्ठ का मुख्य बन्दरगाह था। इसके पास ही कारदीप नामक एक द्वीप भी बताया गया है।[3]

सतियपुत्त, केरलपुत्त, पण्डिय और चोल राष्ट्रों का उल्लेख स्वतन्त्र जनपदों के रूप में हमें सर्वप्रथम अशोक के अभिलेखों में मिलता है। वस्तुतः इन्हें भी "दमिल" राष्ट्र की परिधि में रक्खा जा सकता है। जहाँ तक पालि निकायों और भगवान् बुद्ध के जीवन-काल की परिस्थितियों से सम्बन्ध है, इन जनपदों के सम्बन्ध में अधिक परिचय की सूचना हमें नहीं मिलती।

जातक[4] मे एक जगह भेण्णाकट नामक जनपद का उल्लेख है। इसे नासिक के अभिलेखों के "वेण्णाकटक" से मिलाकर कोल्हापुर के आसपास का प्रदेश माना जा सकता है। जबलपुर (मध्य-प्रदेश) से १४ मील दूर नर्मदा नदी के तट पर भेड़ाघाट नामक प्रसिद्ध स्थान है जहाँ अन्य अनेक मूर्तियों के साथ एक मूर्ति कुशाण-काल की भी मिली है। यह भी सम्भव है कि पालि का भेण्णाकट यह भेड़ाघाट ही हो। अन्य कोई सूचना इस भेण्णाकट जनपद के सम्बन्ध में नहीं मिलती।

गोदावरी नदी से लेकर महानदी तक का प्रदेश बुद्ध-काल में कलिंग जनपद कहलाता था। इस प्रकार इस जनपद के दक्षिण में आन्ध्र (अन्धक) राष्ट्र था और उत्तर में उत्कल (उक्कल) प्रदेश। दूसरे शब्दों में, बुद्ध-काल में उड़ीसा का उत्तरी भाग उक्कल (उत्कल) कहलाता था और दक्षिणी भाग कलिंग। जैसा हम पहले देख चुके हैं, दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में कलिंग राज्य, उसके राजा सत्तभू और राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है। इसी प्रकार दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के ओकिलिनी-सुत्त में भी कलिंग राज्य और उसकी राजधानी

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।

२. जिल्द चौथी, पृष्ठ ५०।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २३८।

४. जिल्द छठी, पृष्ठ २३७।

दन्तपुर का उल्लेख आया है। अनेक जातक-कथाओं[1] में भी कलिंग और उसकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है तथा निद्देस[2] में भी। इन सब से मालूम पड़ता है कि दन्तपुर काफी प्राचीन और सुविदित नगर था। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् बुद्ध की डाढ़ (दाठा) के कलिंग देश के राजा के राज्य में पूजित होने का उल्लेख है। सिंहली वंश-ग्रन्थों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद ही उनका दन्त-धातु कलिंग देश में ले जाया गया था, जहाँ के राजा ब्रह्मदत्त ने उस पर एक चैत्य की स्थापना की थी। उत्तरकालीन "दाठावंस" के अनुसार लंका के राजा कीर्तिश्री मेघवर्ण के शासन-काल में यह दन्त-धातु चतुर्थ शताब्दी ईसवी में दन्तपुर से लंका के अनुराधपुर नगर में ले जाया गया और आज वह काण्डी के एक भव्य चैत्य में सुरक्षित बताया जाता है। दन्तपुर की आधुनिक पहचान अभी पूर्ण निश्चित ढंग से नहीं की जा सकी है। कनिंघम ने इसे गोदावरी के तट पर स्थित राजामहेन्द्री नामक स्थान से मिलाया था।[3] कुछ विद्वानों के मतानुसार दन्तपुर सम्भवतः मेदिनीपुर जिले का आधुनिक दाँतन नामक स्थान है। गंजाम जिले के दन्तवक्त्र नामक जिले के रूप में प्राचीन दन्तपुर नगर की स्मृति सुरक्षित है, ऐसा डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का अभिमत है।[4] परन्तु वस्तुतः प्राचीन कलिंग राज्य की राजधानी दन्तपुर वर्तमान जगन्नाथ पुरी ही है, ऐसा निश्चयतः कहा जा सकता है।[5]

कुम्भकार जातक में कलिंग देश के राजा करण्ड का उल्लेख है और उसे विदेहराज निमि का समकालीन बताया गया है। कलिंग-बोधि जातक के अनुसार कलिंग देश के एक राजकुमार ने मद्र देश की एक राजकुमारी से विवाह किया

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६७, ३७१, ३८१; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३७६; जिल्द चौथी, पृष्ठ २३०, २३१, २३२, २३६।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५९०-५९३।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८९, पद-संकेत १।

५. देखिये दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ५३।

था। महावंस[१] में कलिंग और वंग देश के राजाओं के बीच भी वैवाहिक सम्बन्धों के वर्णन हैं।

सातवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री यूआन् चुआङ् ने कलिंग देश की यात्रा की थी। उसने इस प्रदेश में "कुग्-यु-तो" (गंजाम) से १४०० या १५०० 'ली' (करीब २३३ से लेकर २५० मील तक) घने जंगल में यात्रा करते हुए प्रवेश किया था।[२] कलिंग देश का विस्तार यूआन् चुआङ् ने, जैसा उसने उसे उस समय देखा, ५००० 'ली' (करीब ८३३ मील) और उसकी राजधानी का २० 'ली' (करीब ३ मील) बताया है।[३] यूआन् चुआङ् ने कलिंग देश को अधिकतर एक उजड़े हुए प्रदेश के रूप में पाया था। एक महायानी सूत्र के आधार पर यूआन् चुआङ् ने कहा है कि एक पूर्वकालीन ऋषि के क्रोधपूर्वक शाप दे देने के कारण दण्डकारण्य, कलिंगारण्य और मातंगारण्य उजाड़ हो गये थे।[४] इसी प्रकार की अनुश्रुति मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त में, मिलिन्दपञ्हो में तथा मातंग जातक में भी निहित है।[५] कलिंगारण्य का परिचय हम दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवरण देते समय दे चुके हैं। यह गोदावरी और महानदी के बीच का वन था।

वेस्सन्तर (महावेस्सन्तर) जातक में कलिंग राष्ट्र के एक दुन्निवित्थ या दुन्निविट्ठ नामक गाँव का उल्लेख है।[६] इसी जातक में दुन्निवित्थ या दुन्निविट्ठ नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है, जिसे जेतुत्तर नगर से बीस योजन, कोन्तिमार नदी से दस योजन और अरंजरगिरि से पाँच योजन दूर बताया गया है।[७] जातक

---

१. ६।१ (हिन्दी अनुवाद)।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९८; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ५९०।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९९।

४. उपर्युक्त के समान।

५. देखिये द्वितीय परिच्छेद में दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन।

६. जातक, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५६७-५६८ (हिन्दी अनुवाद)

७. वहीं, पृष्ठ ५५९

के इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही नाम के ये दो गाँव भिन्न-भिन्न थे।[1] दुन्निविट्ठ ब्राह्मण-ग्राम को हमें जेतुत्तर और चेत रट्ठ के बीच में मानना चाहिये, जब कि हमारा यह गाम निश्चित रूप से कलिंग राष्ट्र में था।

कुम्भवती नामक नगर को भी हमें कलिंग जनपद में ही मानना चाहिए। यह राजा दण्डकी की राजधानी था।[2] इस राजा की दुष्टता के कारण ही कलिंग जनपद उजाड़ हो गया था, यह हम पहले (दक्षिणापथ के विवेचन में) देख चुके हैं। इन्द्रिय जातक के अनुसार ऋषि किसवच्छ ने कुम्भवती नगर में निवास किया था।

उक्कल (उन्कल) जनपद बुद्ध-काल में महानदी और सुह्म (सुम्भ) जनपद के बीच का प्रदेश माना जाता था। इसे आधुनिक उड़ीसा का उत्तरी भाग समझना चाहिए। तपस्सु और भल्लिक नामक व्यापारी, जिन्होंने भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद, उरुवेला में राजायतन वृक्ष के नीचे, प्रथम आहार दिया था, उक्कल जनपद से ही व्यापारार्थ मध्य देश की ओर आ रहे थे।[3] हम पहले देख चुके हैं कि महावस्तु[4] में इन व्यापारियों को उत्कल देश के अधिष्ठान नामक नगर का निवासी बताया गया है और उत्कल देश को वहाँ उत्तरापथ में बताया गया है। यह बात पालि परम्परा से मेल नहीं खाती, केवल इतना कहकर डा०. मललसेकर ने इसे छोड़ दिया है।[5] परन्तु डा० लाहा ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया है और वह यह है कि थेरगाथा की अट्ठकथा[6] में इन दोनों व्यापारियों को पोक्खरवती नगर का निवासी बताया गया है, जो गन्धार

---

१. देखिये पीछे सिवि जनपद का विवेचन।

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३४।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७७; जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०३ (हिन्दी अनुवाद)।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०३।

५. देखिये उनकी डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३०।

६. जिल्द पहली, पृष्ठ ४८।

राष्ट्र का एक प्रसिद्ध नगर था।[1] दूसरी ओर अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा[2] में इन दोनों उपासकों को असितंजन नामक नगर का निवासी बताया गया है। घट जातक के आधार पर हम देखते हैं कि असितंजन नगर कंसभोग की राजधानी था और उत्तरापथ में था। यह बहुत सम्भव है कि तपस्सु और भल्लिक निवासी तो उत्तरापथ के ही रहे हों, परन्तु व्यापार करते हुए वे उक्कल जनपद से मज्झिम देस की ओर आ रहे हों। इस प्रकार उक्कल जनपद के उड़ीसा के उत्तरी भाग होने में और इन व्यापारियों के उत्तरापथ के निवासी होने में कोई विरोध नहीं होगा। "अपदान[3]" में ओड्ड (सं० ओड्र) और ओक्कल (सं० उत्कल) जनपदों को संयुक्त रूप से प्रयुक्त किया गया है, जिन दोनों से तात्पर्य उड़ीसा के दो भागों से ही हो सकता है। यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। यूआन् चुआङ् ने कर्णसुवर्ण (सम्भवतः रांगामाटि, मुर्शिदाबाद के समीप) से ७०० 'ली' दक्षिण-पश्चिम में यात्रा करने के पश्चात् "वु-तु", "उ-तु" या "उ-छ" प्रदेश में प्रवेश किया था।[4] यह "वु-तु" प्रदेश अपदान का ओड्ड ही है, जिसे महाभारत में 'उड्र' और मनुस्मृति में 'ओड्र' कह कर पुकारा गया है और जिसे प्लाइनी ने 'ओरितिस' कहकर पुकारा है।[5] लामा तारानाथ ने इसी देश को ओडिविश कहकर पुकारा है, जो संस्कृत "ओद्र विषय" का विकृत रूप ही है। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि उक्कल के समान पालि अपदान का ओड्ड जनपद भी उत्तरी उड़ीसा में ही था, जब कि संस्कृत परम्परा के उत्कल, ओड्र या लामा तारानाथ के ओडिविश नामों

---

१. इण्डिया ऐज् डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ १०९।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २०७।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९३; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५८४।

५. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार लिखित "नोट्स्" पृष्ठ ७३३; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९४-१९५।

से तात्पर्य उत्तरकालीन इतिहास में पूरे उड़ीसा से भी लिया जाने लगा। यूआन् चुआङ् का "वु-तु" प्रदेश भी उड़ीसा के उत्तर में ही था, क्योंकि उसके दक्षिण-पश्चिम १२०० 'ली' की यात्रा के पश्चात् चीनी यात्री ने अपना आना "कुंग्-यु-तो" अर्थात् कोङ्गोद नामक देश में दिखाया है।[1] और फिर इसके भी १४०० या १५००'ली' दक्षिण-पश्चिम चलने के पश्चात् उसने अपना कलिंग पहुँचना दिखाया है[2], जिसे हम उड़ीसा राज्य का दक्षिणी भाग ही मान सकते हैं। उक्कल जनपद भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक सुविदित जनपद था। स्वयं भगवान् ने इस जनपद के वस्स और भञ्ञ नामक दो नास्तिकवादियों (नत्थिकवादा) का उल्लेख संयुत्त-निकाय के निरुत्तिपथ-सुत्त में किया है।[3]

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९६; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५८७।

२. उपर्युक्त के समान, पृष्ठ क्रमशः १९८ तथा ५९०।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३५३।

चौथा परिच्छेद

मानव-भूगोल

प्राकृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप मनुष्य तथा उसकी क्रियाओं का अध्ययन मानव-भूगोल का विषय है। उसका मुख्य उद्देश्य उन अवस्थाओं का अध्ययन करना है जिन्हें मनुष्य ने धरातल को अपने जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित कर उत्पन्न किया है। इस प्रकार मानव-भूगोल एक सामाजिक विज्ञान है और उसका प्रवेश इतिहास, राजनीति और समाज-शास्त्र जैसे विषयों में आसानी से हो जाता है। यहाँ अपने विषय को निश्चित भौगोलिक परिधि में रख कर हम केवल बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या, लोगों के मुख्य पेशे और विशेषतः श्रमिकों की अवस्था का चित्र उपस्थित करेंगे

बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या, विशेषतः नगरों में, घनी बसी हुई थी। हमने देखा है कि प्रायः सभी मुख्य बुद्धकालीन नगरों के वर्णन के प्रसंग में उन्हें 'बहुजना' और 'आकिण्ण मनुस्सा' कह कर पुकारा गया है।[1] बुद्धकालीन भारत के सब छोटे-बड़े नगरों की संख्या पालि-परम्परा के अनुसार ८४,००० बताई गई है।[2]

---

१. केवट्ट-सुत्त (दीघ० १।११) में यह वर्णन नालन्दा के लिये प्रयुक्त किया गया है और महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३) में कुशावती के लिये। विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २६६) में यही बात वैशाली के सम्बन्ध में कही गई है। अम्बट्ठ-सुत्त (दीघ० १।३) में कोसल देश के उक्कट्ठा नामक नगर को 'जनाकीर्ण' कहा गया है और कूटदन्त सुत्त (दीघ० १।४) में यही बात चम्पा नगरी के सम्बन्ध में कही गई है।

२. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९; मिलाइये समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १११; दीपवंस, पृष्ठ ४९; महावंस ५।१७६।

डा० मललसेकर का कहना है कि इस संख्या को पालि विवरणों में कहीं-कहीं घटा कर ६०,००० और ४०,००० तक तो लाया गया है, परन्तु इससे कम कभी नहीं।[1] 'अभिधानप्पदीपिका' में बुद्धकालीन भारत के बीस बड़े नगरों का उल्लेख है, जिनके नाम हैं, वाराणसी, श्रावस्ती, वैशाली, मिथिला, आलवी, कौशाम्बी, उज्जयिनी, (उज्जेनी), तक्षशिला, चम्पा, सागल, सुंसुमारगिरिनगर, राजगृह, कपिलवस्तु, साकेत, इन्द्रप्रस्थ (इन्दपत्त या इन्दपट्ट), उक्कट्ठा, पाटलिपुत्र, जेतुत्तर, संकस्स और कुसिनारा। जहाँ तक भगवान् बुद्ध के जीवन-काल की स्थिति से सम्बन्ध है, हम इन बड़े नगरों की सूची को बिलकुल ठीक नहीं मान सकते, क्योंकि जैसा हमें महापरिनिब्बाण-सुत्त से पता लगता है, बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिपुत्र एक ग्राम मात्र था और उसकी भावी उन्नति की, जिसके सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध ने भविष्यवाणी की, इस समय नींव ही डाली जा रही थी। इसी प्रकार इसी सुत्त के आधार पर हम जानते है कि कुसिनारा भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक क्षुद्र नगला मात्र था, यद्यपि बुद्ध-पूर्व युग में कुशावती नाम से वह एक महान् नगर रह चुका था। दूसरी ओर उपर्युक्त सूची में आपण (अंगुत्तराप), भद्रवती (चेदि राष्ट्र), सोत्थिवति नगर (चेदि राष्ट्र), सहजाति (चेदि राष्ट्र), सोरेय्य (पंचाल), वेरंजा (सूरसेन और पंचाल की सीमा पर, सम्भवतः दक्षिण पंचाल में) और सेतव्या (कोसल) जैसे कई नगरों और निगमों का उल्लेख नही है, जो पालि विवरणों के अनुसार बुद्ध-काल में महत्त्वपूर्ण स्थान माने जाते थे और अधिकतर व्यापारिक मार्गों पर बसे हुए थे। अतः इस सूची की बात छोड़कर यदि हम केवल पालि तिपिटक के आधार पर देखें तो इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महापरिनिब्बाण-सुत्त में वर्णित चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी, इन छह महानगरों (महानगरानि) के अतिरिक्त कम से कम बीस अन्य बड़े नगर बुद्धकालीन भारत में थे और उन सब के सम्बन्ध में 'मनुस्सामिकिण्णा', 'बहुजना' और 'आकिण्णमनुस्सा' जैसे विशेषण लगाये जा सकते थे। किस नगर की कितनी जनसंख्या थी, इसके निश्चित विवरण हमें नहीं मिलते और जो मिलते भी हैं वे भी निश्चित संख्याओं के रूप में अधिक प्रामाणिक नहीं माने

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ९४१।

जा सकते। उदाहरणार्थं आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि श्रावस्ती में ५७ लाख परिवार रहते थे और उसकी जनसंख्या १८ करोड़ थी,[१] जो अत्यन्तातिशयोक्ति का उदाहरण ही माना जा सकता है। इतनी आबादी तो हम पूरे काशी-कोसल की भी नही मान सकते। ७७०७ लिच्छवि-राजाओं की वैशाली नगरी के सम्बन्ध में हम देख ही चुके है कि जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि के कारण उसके प्राकार को तीन बार बढ़ाया गया था, जिससे उसका नाम वैशाली पड़ा था। विनय-पिटक में कहा गया है कि मगधराज बिम्बिसार राजगृह नगर के एक लाख बीस हजार (१२ नयुत) प्रतिष्ठित नागरिकों को लेकर भगवान् बुद्ध के स्वागतार्थ लट्ठि-वन-उद्यान मे उनसे मिलने गया था।[२] इसका अर्थ यह है कि राजगृह की जनसंख्या उस समय एक लाख बीस हजार से अधिक होनी चाहिए, परन्तु आचार्य बुद्धघोष का यह कहना कि राजगृह की जनसंख्या १८ कोटि (करोड़) थी,[३] ठीक नही माना जा सकता, जब तक कि हम कोटि को करोड़ से भिन्न संख्या न मानें, जिसके लिए हमारे पास कोई आधार नही है।[४] अन्य बुद्धकालीन नगरो की जनसंख्या सम्बन्धी विवरणों को सकलित करने पर भी हम सख्याओं के सम्बन्ध मे किसी निश्चित निष्कर्ष पर नही पहुँच सकते। परन्तु इतना निश्चित जान पड़ता है कि सभी मुख्य व्यापारिक-नगर घने बसे हुए थे और उनकी जनसंख्या उस समय की परिस्थिति को देखते हुए काफी अधिक थी।

अब हम गाँवो मे बसी हुई आबादी पर आते है। बुद्ध-काल में छोटे से छोटे और बड़े से बड़े गाँव थे। जातक-कथाओ मे हमे ऐसे अनेक गाँवों के उल्लेख मिलते

---

१. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ ३७१; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९६।

३. समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१३; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४, पद-संकेत २।

४. मिलाइये ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर : कन्साइज पालि-इंगलिश डिक्श-नरी, पृष्ठ ८४।

हैं, जिनमें से किन्हीं के परिवारों की संख्या कुल तीस ही थी,[1] किन्हीं की ५००[2] और किन्हीं में एक हजार परिवार तक रहते थे।[3] सब से छोटे गाँव को 'गामक' कहा जाता था। साधारणतः तीस से लेकर ५० तक घर ही उसमें होते थे। आजकल जिसे हम नगला कहते हैं, उसे गामक समझना चाहिए। 'गाम' साधारण गाँव होता था, जिसमें गामक से अधिक, सम्भवतः ५० और २०० के बीच, परिवार होते थे। 'द्वार गाम' वे कहलाते थे जो किसी बड़े नगर के द्वार पर स्थित हों। इन्हें आजकल के उप-नगर जैसे समझना चाहिए। 'पच्चन्तगाम' (प्रत्यन्त ग्राम) वे गाँव कहलाते थे, जो दो राष्ट्रों या जनपदों की सीमा पर स्थित हों। इस प्रकार के गाँवों का जीवन, विशेषतः युद्ध-काल में, अस्तव्यस्त हो जाता था और उनकी जनसंख्या भी प्रायः अल्प और बिखरी हुई होती थी। सब से बड़े गाँव वे थे जो 'निगम-गाम' कहलाते थे, जिनकी जनसंख्या निगम से कम और गाँव से अधिक होती थी। इनकी जनसंख्या कम से कम २००० अवश्य होती होगी। इन्हें आजकल के छोटे कस्बों के समान समझना चाहिए। इन सभी गाँवों की आबादी नगरों और निगमों के समान घनी तो नहीं थी, परन्तु उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि कुल मिला कर बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या हमें उस समय को देखते हुए काफी अधिक माननी पड़ेगी। आज के समान भारत की अधिकांश जनसंख्या उस समय भी गाँवों में ही निवास करती थी।

भगवान् बुद्ध ने एक बार भविष्यवाणी की थी कि मैत्रेय बुद्ध के आविर्भाव के समय "यह जम्बुद्वीप समृद्ध और सम्पन्न होगा। ग्राम, निगम, जनपद और राजधानी इतने निकट होंगे कि एक मुर्गी भी कुदान भर कर एक घर से दूसरे घर तक पहुँच जाय..... सरकंडे के वन की तरह जम्बुद्वीप मानो नरक तक मनुष्यों की आबादी से भर जायगा।"[4] भगवान् बुद्ध की यह भविष्यवाणी उनके समय की समृद्धि और निरन्तर बढ़ती हुई जन-संख्या के आकलन पर ही आधारित हो सकती थी। आचार्य

---

१. 'तस्मिं च गामे तिंस एव कुलानि होन्ति', जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १९९।

२. 'एकस्मिं पंच-पंच कुलसतानि होन्ति', जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ७१।

३. 'सहस्सकुटिको गामो', जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २८१।

४. चक्कवत्ति-सीहनाद सुत्त (दीघ० ३।३)।

बुद्धघोष ने कहा है कि भगवान् बुद्ध के पिता और माता के जाति-सम्बन्धियों के परिवारों की संख्या अस्सी-अस्सी हजार थी।[१] डा० टी० डबल्यू० रायस डेविड्स् ने इस अस्सी हजार संख्या को मोटी संख्या मात्र न मान कर, जैसी कि वह वास्तव में है, प्रकृत रूप में ठीक मान लिया है और फिर गणना कर उन्होंने हिसाब लगाया है कि यदि एक परिवार में हम औसतन ६ सदस्य मानें तो अकेले शाक्य जनपद की आबादी बुद्ध-काल में करीब १० लाख बैठेगी, जिसे उन्होंने सत्य के समीप माना है।[२] यदि डॉ० रायस डेविड्स् की कसौटी को हम ठीक मानें और उसी हिसाब से अंग को सम्मिलित कर मगध के ८०,००० गाँवों[३] की आबादी का हिसाब लगाएँ तो वह भी बहुत अधिक बैठेगी। यदि एक परिवार में हम ६ सदस्य मानें और एक गाँव में औसतन १०० परिवार, तो मगध राज्य के ८०,००० गाँवों की आबादी ४ करोड़ ८० लाख बैठेगी, जिसे भी हम ठीक ही मान सकते हैं। समन्तपासादिका[४] के अनुसार काशी-कोसल के गाँवों की संख्या भी ८०,००० ही थी और सुमंगलविलासिनी[५] के अनुसार उसका विस्तार भी मगध के समान ३०० योजन था। अतः मगध के समान कोसल राज्य की आबादी भी चार करोड़ ८० लाख माननी पड़ेगी, जिसे भी ठीक माना जा सकता है। जातक-कथाओं में १६०००[६] और ६०,०००[७] गाँवों की संख्या वाले अनेक जनपदों के विवरण हैं। यदि इसी प्रकार बुद्धकालीन भारत के अन्य सब

---

१. मिलाइये विसुद्धिमग्ग ७।५५ (धर्मानन्द कोसम्बी का देवनागरी संस्करण)।

२. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १३ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर, १९५०); मिलाइये, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १७५।

३. देखिये पीछे तृतीय परिच्छेद में मगध राज्य का वर्णन।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४; पद-संकेत २।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ १४८।

६. "गामसहस्सानि परिपुण्णानि सोलस", जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६५-३६७।

७. "सट्ठिगामसहस्सानि परिपुण्णानि सब्बस", जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २५८।

राज्यों, जनपदों और गणतन्त्रों के नगरों, निगमों और ग्रामों आदि की जन-संख्या का हिसाब लगाया जाय, (जिसे निश्चित संख्याओं के अभाव में मनमाना ही कहा जा सकता है, और जैसा हम पहले कह चुके हैं, पालि विवरणों की संख्याएं भी अधिक समाश्रयणीय नही हैं) तो बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या करीब ३० करोड़ से कम नही बैठेगी।[१] इस प्रकार बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या उस समय को देखते हुए घनी बसी हुई थी। परन्तु हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभी पर्याप्त भूमि बनों के रूप में खेती के योग्य बनाने के लिए पड़ी हुई थी। अंगुत्तर-निकाय के एकक निपात के एक सुत्त में हम स्वयं भगवान् बुद्ध को यह कहते देखते हैं कि जम्बुद्वीप की अधिकतर भूमि तो ऊँची-नीची और झाड़-झंखाड़ से भरी हुई है और समतल मैदानी भूमि तो थोड़ी ही है। अनेक जातक-कथाओं में हम वन-भूमि को साफ कर किसानों को कृषि-कर्म करते देखते हैं।[२] समृद्धि के साथ आबादी बढ़ रही थी। लोगों को अधिक से अधिक सन्तान की अभिलाषा रहती थी।[३] परन्तु अभी जम्बुद्वीप 'नरक-पर्यन्त' आबादी से नहीं भरा था।

---

१. देखिये केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २००-२०१; रतिलाल मेहता : प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १८४; रतिलाल मेहता ने अपनी इसी पुस्तक के पृष्ठ २०५ में बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या का अनुमान १५ करोड़ लगाया है। उन्होंने उस समय भारत के गाँवों की संख्या ६०,००० मान कर हिसाब लगाया है, जो किसी प्रकार ठीक नहीं माना जा सकता। नगरों की जनसंख्या को भी यहाँ बिलकुल छोड़ दिया गया है।

२. मिलाइये, "सब्बं वनं छिन्दित्वा खेत्तानि कारित्वा कसिकम्मं करिंसु" जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८; मिलाइये जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २५९।

३. देखिये उदान (हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २२-२६) में कोलिय-दुहिता सुप्रवासा का उदाहरण, जो वर्षों की पीड़ा के बाद किसी प्रकार एक पुत्र को जन कर बची थी, परन्तु फिर भी ऐसे ही अन्य सात पुत्रों को प्राप्त करने की उसे अभिलाषा थी। किसा गोतमी को अपने पति के घर में तब तक सम्मान नहीं मिला जब तक उसने सन्तान-प्रसव नहीं किया। देखिये थेरीगाथा की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) में इस भिक्षुणी का जीवन-परिचय। निग्रोध जातक से भी इसी

आज की तरह बुद्ध-काल में भी भारतीय जनता का मुख्य पेशा कृषि था। राजा का यह कर्तव्य माना जाता था कि उसके जनपद में जो लोग कृषि करना चाहते हों, उन्हें वह बीज-भात (बीज-भत्तं) दे।[1] कृषि-कर्म (कसि कम्म) उस समय किसी जाति-विशेष का पेशा नही माना जाता था। हम मगध के एकनाला ब्राह्मण-ग्राम के कसि भारद्वाज ब्राह्मण को ५०० हल (पंचमतानि नंगलसतानि) लेकर जुताई करवाते देखते हैं।[2] मज्झिम-निकाय के गोपक-मोग्गल्लान-सुत्तन्त से हम जानते हैं कि मगध का गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण भी कृषक था। पिप्पलि माणवक (बाद में स्थविर महाकाश्यप) के यहाँ भी खेती होती थी। बुद्ध-काल में भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में बँटी हुई थी, जिन पर अलग-अलग परिवार खेती करते थे और फसल काट कर अपने-अपने घर लाते थे। परन्तु एक प्रकार का सामूहिक अधिकार भी सम्पूर्ण गाँव की भूमि पर माना जाता था, जिसे 'गाम खेत्त' कहा जाता था और जिसके सम्बन्ध में 'गामिक' या 'गामभोजक' के विशेष कर्तव्य और अधिकार होते थे और एक व्यक्ति या परिवार को अपने भाग की भूमि को बेचने के अधिकार सीमित थे। पूरे गाँव के सामूहिक खेत या 'गाम-खेत्त' मे भिन्न-भिन्न परिवारों के अलग-अलग खेतों के टुकड़े होते थे जो मेंड़ों या पानी की नालियों के द्वारा एक दूसरे से विभक्त होते थे या कही-कही स्तम्भ (पालि, थम्भे) भी लगा दिये जाते थे। मगध के खेतों का यह दृश्य भगवान् बुद्ध को बड़ा सुहावना लगा था और इसी के प्रेरणा स्वरूप उन्हें भिक्षुओं के चीवर बनवाने की कल्पना मिली थी। "देखते हो आनन्द! मगध के इन मेंड़-बँधे, कतार-बँधे, मर्यादा-बँधे, चौमेंड़ बँधे खेतों को ... क्या आनन्द, भिक्षुओं के लिए ऐसे चीवर बना सकते हो?"[3] कपड़े के भिन्न-भिन्न टुकड़ों को सीकर बनाये

प्रकार की बात प्रकट होती है। वैशाली के बहुपुत्रक चैत्य का तो यह नाम ही इसलिये पड़ा था कि उसके समीप इसी (बहुपुत्रक) नाम का एक बरगद का पेड़ था जिसके देवता से बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के लिए मनौतियाँ की जाती थीं।

१. कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।५)।

२. कसिभारद्वाज-सुत्त (सुत्त-निपात); देखिये संयुत्त-निकाय में कसि-सुत्त भी, संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ १३८-१३९।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७९।

गये भिक्षु-चीवर सचमुच आकार में मेंड़-बँधे (अच्चिबद्धं), कतार-बँधे (पालि-बद्धं), मर्यादा में बँधे (मरियादा-बद्धं) और चौमेंड़ बँधे (सिंघाटकबद्धं) 'मगध खेत्तं' के समान ही लगते थे, जिसमें छोटे-छोटे आकार के अनेक खेत जुड़े हुए होते थे। मललसेकर का कहना है कि प्रत्येक 'मगध-खेत्त' विस्तार में एक गावुत (करीब दो मील) होता था।[1] सुवण्ण-कक्कट जातक और सालिकेदार जातक में एक हजार करीस (लगभग ८००० एकड़) क्षेत्रफल के एक खेत का उल्लेख है। यह खेत राजगृह की पूर्व या उत्तर-पूर्व दिशा में सालिन्दिय नामक ब्राह्मण-ग्राम में था। सालिकेदार जातक में कहा गया है कि इस खेत में नौकरों के द्वारा खेती कराई जाती थी। मललसेकर ने १००० करीस को लगभग ८००० एकड़ के बराबर माना है।[2]

जिस ढंग से बुद्ध-काल में खेती की जाती थी, वह प्रारम्भिक और उस युग के अनुरूप होते हुए भी आजकल के भी प्रायः समान था। जोतने-बोने से लेकर अन्न को इकट्ठा करने तक की सब क्रियाएँ प्रायः आजकल के समान ही की जाती थीं। महानाम शाक्य अपने छोटे भाई अनुरुद्ध को गृहस्थी की जानकारी देते हुए कहता है, "पहले खेत को जोतवाना चाहिए। जोतवा कर बोवाना चाहिए। बोवा कर पानी देना चाहिए। पानी भर कर निकालना चाहिए, निकाल कर (फसल को) सुखाना चाहिए। सुखाकर कटवाना चाहिए। कटवा कर ऊपर लाना चाहिए। ऊपर लाकर सीधा करवाना चाहिए। सीधा कर मर्दन करवाना (मिसवाना) चाहिए, मिसवा कर पयाल हटाना चाहिए। पयाल हटवा कर भूसी हटानी चाहिए।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०३।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०४; इस प्रकार उनके मतानुसार १ करीस ८ एकड़ के बराबर होगा। ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने एक करीस को लगभग १ एकड़ के बराबर माना है। देखिये उनकी कन्साइज पालि-इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ ७५। डॉ० टी० डबल्यू० रायस डेविड्स् और विलियम स्टीड ने पालि-इंगलिश डिक्शनरी (पालि टैक्सट् सोसायटी, लंदन, १९२५) में 'करीस' शब्द का अर्थ करते हुए उसे "भूमि का एक वर्गाकार माप" (a square measure of land) मात्र कह कर छोड़ दिया है।

भूसी हटा कर फटकवाना चाहिये। फटकवा कर जमा करना चाहिए।"[1] हल और बैल तो भारतीय कृषि-कर्म के अनिवार्य अंग हैं। उस समय भी हलों में बैल जोड़ कर खेत जोते जाते थे जैसे कि आज। सीहचम्म जातक तथा अन्य कई जातकों[2] में इस प्रकार खेत जोतने के उल्लेख हैं। साधक भिक्षु-भिक्षुणियों को अनेक बार याद दिलाया गया है, "हलों से खेत को जोत कर और धरती में बीज बोकर मनुष्य धन प्राप्त करते हैं और अपने स्त्री-पुत्रों का पालन-पोषण करते हैं... तुम भी बुद्ध-शासन को क्यों नही करते, जिसे क़र के पीछे पछताना नही पडता।"[3] आश्चर्यकर लगते हुए भी यह सत्य है कि हल जोतने के काम को बुद्ध-काल में राष्ट्रीय महत्त्व का काम समझा जाता था। शाक्य लोग तो बोने का एक उत्सव (वप्पमंगलं) ही मनाते थे, जिसमें एक हजार हल साथ-साथ चलते थे और अमात्यों के सहित राजा भी स्वयं हल चलाता था।[4] यह महापर्व इस बात का द्योतक है कि कृषि-कर्म उस समय अत्यन्त गौरवास्पद काम समझा जाता था और जनता के समान राजा भी उसमें भाग लेना अपना कर्तव्य समझता था। सुत्त-निपात के कसि-भारद्वाज सुत्त मे हम भारद्वाज ब्राह्मण को दक्षिणागिरि जनपद के एकनाला ब्राह्मण-ग्राम मे खेती करते देखते ही है। जोतने के बाद खेत की गुराई करने के उदाहरण भी पालि तिपिटक, विशेषत: जातकों,[5] मे मिलते हैं और इसी प्रकार फावडे के उपयोग का भी उल्लेख है।[6] खड़ी फसल को (विशेषत: धान की फसल का उल्लेख किया गया है) हिरन आदि जानवर नष्ट न करें, इसके लिए बुद्ध-कालीन किसान इन्हे पकडने आदि का प्रबन्ध भी करते थे, ऐसा हमें लक्खण जातक

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४७७।

२. उदाहरणतः जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६५।

३. "नंगलेहि कसं खेत्तं बीजानि पवपं छमा। पुत्तदारानि पोसेन्ता धनं विन्दन्ति मानवा.......करोथ बुद्धसासनं यं कत्वा नानुतप्पति", थेरीगाथा, गाथाएँ ११२, ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

४. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७५ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९।

६. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६८।

से विदित होता है। खलिहानों (खलमंडल) में फसल को इकट्ठा कर उसे आज के समान ही उसाया जाता था[१] और फिर अनाज को घर लाकर कोठों (कोट्ठा) या धान्यागारों (धञ्ञागारा) में भर लिया जाता था।[२] मुसलों से धान को आज के समान ही कूटा जाता था। "मुसलानि गहेत्वान धञ्ञं कोट्टेन्ति मानवा।"[३] बुद्धकालीन भारत में किसानों का जीवन सुखी और समृद्ध था और वे शस्य की सम्पन्नता से युक्त थे। स्थविर ब्रह्मालि ने 'थेरगाथा' में उद्गार करते हुए अत्यन्त अनायास रूप से कहा है, "मैंने सुना है मगध के सब निवासी शस्य की सम्पन्नता से युक्त है, वे सुखजीवी हैं।"[४]

क्या-क्या फँसलें बुद्ध-काल में भारतीय किसान पैदा करते थे, इसके सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचना यत्र-तत्र बिखरी हुई हमें जातकों में प्रभूत रूप से मिलती है। विशेषत: मगध और पूर्वी उत्तर-प्रदेश का वर्णन ही चूँकि पालि तिपिटक में अधिक हुआ है, अत: मुख्य फसल जिसके अधिक वर्णन आये है, धान ही है। उसके विभिन्न प्रकार, जैसे सालि (शालि), वीहि (व्रीहि) और तंडुल (तंदुल) आदि उस समय बहुतायत से उगाये जाते थे। शालि-मांस-ओदन उस समय स्वादिष्ट और बड़े लोगों के खाने योग्य भोजन माना जाता था। धान के अतिरिक्त यव (जौ) और कंगु (बाजरा) की भी खेती होती थी। चने (कलाये) भी उगाये जाते थे और दालों में मूँग और उरद (मुग्ग-मास) का उत्पादन किया जाता था। तिल, सरसों (सिद्धट्ठक) और एरण्ड (अरंडी) की भी खेती होती थी। मसालों में मिर्च (मरिच) और जीरे (जीरक) की भी खेती होती थी। पान (तम्बुलं) और सुपारी (पूग) का प्रचार था, अत: उनके पेड़ भी काफी संख्या में उगाये जाते थे। ईख की खेती काफी बड़े पैमाने पर मगध में उस समय होती थी और गुड़ और शक्कर (सक्कर)

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३४१।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २४०।

३. थेरीगाथा, गाथा ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

४. "सम्पन्नसस्सा मगधा केवला इति मे सुतं...सुखजीविनो", थेरगाथा, गाथा २०८ (भिक्षु उत्तम द्वारा प्रकाशित, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, देवनागरी संस्करण)।

भी गाँवों में बनाए जाते थे। गुड़ से भरी पाँच सौ गाड़ियों को राजगृह से अन्धकविन्द के मार्ग में जाते हुए विनय-पिटक में हम देखते हैं।[1] गुड़ के बनाये जाने का भी विनय-पिटक में उल्लेख है।[2] ईख के यन्त्रो (उच्छु-यन्ते) का, जिनसे गुड़ शक्कर आदि बनाये जाते थे, जातक में उल्लेख है।[3] सालि (धान) और उच्छु (ईख) की फसल को होने वाली क्रमशः दो बीमारियो 'सेतट्ठिका' (सफेदा रोग) और मांजेट्ठिका (लाल रोग) का वर्णन विनय-पिटक के चुल्लवग्ग और अंगुत्तर-निकाय के पजावती-पब्बज्जा-सुत्त मे है। कपास (कप्पास) की खेती बुद्ध-काल में काफी बड़े पैमाने पर होती थी। उस समय का विस्तृत वस्त्र-उद्योग, जिसका वर्णन हम अगले परिच्छेद में करेंगे, इसी पर आधारित था। तुण्डिल जातक में हमें वाराणसी के आसपास कपास के खेतो का वर्णन मिलता है। महाजनक-जातक मे कपास की रखवाली करने वाली (कप्पासरक्खिका) स्त्रियों का भी उल्लेख है। प्याज और लशुन (लसुण) की भी खेती होती थी और मगध मे एक विशेष प्रकार के लशुन के उगाये जाने का भी उल्लेख है। लौकी (अलाबु) और ककडी (तिपुस) जैसे कई शाक उस समय काफी मात्रा मे पैदा किए जाते थे और फलों की भी खेती होती थी। वाराणसी के राजा का एक माली खट्टे आमों को मीठा और मीठे आमों को खट्टा करने की विधि जानता था।[4] पाटलि, किंशुक (किंसुक) कर्णिकार (कण्णिकार), जयसुमन और केतक जैसे अनेक फूलो के वृक्ष और पौधे भी उस समय लगाये जाते थे। विभिन्न फूलो की सुन्दर मालाएँ भी बनाई जाती थी। आठ गुरु-धर्मों (गरु धम्मा) को स्वीकार करते हुए महाप्रजावती गौतमी कहती है कि वह उन्हे उसी प्रकार सिर पर रक्खेगी जिस प्रकार कोई शौकीन पुरुष उत्पल की माला को या जूही की माला को या मोतिये की माला को।[5] फल और फूल बेचने वाले लोगो को उस समय क्रमशः 'पण्णिका' और 'मालाकारा' कहा जाता था।

---

१. देखिये आगे पाँचवें परिच्छेद में अन्तर्देशीय व्यापार का वर्णन।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २२५-२२६।
३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४०।
४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३।
५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५२१।

'मालाकारा' लोग, जैसा उनके नाम से स्पष्ट है, फूल बेचने के साथ-साथ मालाएँ भी बनाते थे।

सिंचाई का यद्यपि प्रबन्ध था, परन्तु अधिकांश किसान वर्षा पर ही निर्भर करते थे। शाक्य और कोलियों के रोहिणी नदी के बाँध पर हुए झगड़े से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि नदियों को बाँध कर नहरें निकालने का ढंग उस समय लोगों को विदित था, भले ही वह कितनी ही प्रारम्भिक अवस्था में क्यों न रहा हो। पुष्करिणियों से भी सिंचाई का काम लिया जाता था। चूँकि अधिकतर खेती आज के समान वर्षा पर ही निर्भर थी, अतः अकालों के पड़ने के भी विवरण हमें मिलते हैं। वेरंजा का अकाल तो प्रसिद्ध है ही, जहाँ भिक्षु-संघ सहित भगवान् को उत्तरापथ के व्यापारियों के द्वारा प्रदत्त प्रस्थ भर जौ पर निर्भर करना पड़ा था और इस प्रकार जहाँ उन्हें केवल जौ ही खानी पड़ी थी। वज्जि प्रदेश में भी भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक बार भयंकर अकाल पड़ा था। विनय-पिटक के प्रथम पाराजिक में इसका उल्लेख है। इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के कुल-सुत्त में नालन्दा के भीषण अकाल का वर्णन है, जिसके सम्बन्ध में कहा गया है कि "उस समय लोगों के प्राण निकल रहे थे। मरे हुए मनुष्यों की उजली-उजली हड्डियाँ बिखरी हुई थीं। लोग सूख कर सलाई बन गये थे"।[1] वीरक जातक में काशी देश में अकाल पड़ने का उल्लेख है। इसी प्रकार वेस्सन्तर जातक में भी अकाल का वर्णन है और अन्य कई जातकों में भी।[2] बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ दिव्यावदान[3] से हमें पता लगता है कि वाराणसी में एक बार लगातार १२ वर्ष तक अकाल पड़ा था।

बुद्ध-काल में खेती पर राजा की ओर से जो लगान लगता था उसे 'रञ्ञोभाग' (राजा का भाग) या (राज-बलि) कहा जाता था। यह अक्सर उत्पादित फसल के एक अंश के रूप में लिया जाता था।[4] मुद्रा के रूप में लेने के उदाहरण नहीं मिलते,

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५८५।

२. देखिये विशेषतः जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३५, १४९, ३६७; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १८३, ४०१।

३. पृष्ठ १३२।

४. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७८।

यद्यपि अनाज का क्रय-विक्रय मुद्रा के द्वारा बुद्ध के काल में होता था और अनाज खरीदने और बेचने का काम करने वाले व्यापारी 'धञ्ञवाणिजा' कहलाते थे।[1] सालक जातक में धान्य बेच कर जीविका चलाते बोधिसत्व को एक पूर्व जन्म में दिखाया गया है। जब फसल तैयार हो जाती थी तो राजा के कर संग्रह करने वाले अधिकारी जिन्हें 'निग्गाहका' या 'बलि-साधिका' कहा जाता था, खेतों में आकर फसल का आकलन कर लेते थे या खलिहानों में तैयार अनाज का निश्चित भाग राज-कर के रूप में ले लेते थे। कभी-कभी इस काम को राज कर्मचारी न कर स्वयं गाँव का मुखिया, जिसे 'गाम-भोजक', 'गामिक' या 'जेट्ठक' कहा जाता था और जो प्राय: निर्वाचित होता था, राज-बलि को अलग-अलग किसान-परिवारों से इकट्ठा कर (राजबलिं लभित्वा) राजा को दे देता था।[2] उपज का कितना अंश राजा कर के रूप में लेता था, इसके सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने कहा है, "दसवाँ भाग देना जम्बुद्वीप का पुराना रिवाज (पोराण चारित्तं) है। इसलिए दस भाग में एक भाग भूमि के मालिकों को देना चाहिए।[3]" "पोराण चारित्तं" से यहाँ तात्पर्य बिम्बिसार-अजातशत्रु के काल से है, जैसा कि हम आगे के परिच्छेद में देखेंगे, आचार्य बुद्धघोष द्वारा प्रयुक्त शब्द 'पोराणस्स नीलकहापणस्स' में 'पोराण' शब्द का अर्थ बुद्ध या बिम्बिसार-अजातशत्रु के काल से है। जब आचार्य बुद्धघोष किसी विशेष वस्तु के सम्बन्ध में बुद्ध के जीवन-काल और उसके उत्तर काल में विभिन्नता प्रकट करना चाहते हैं तो दोनों की तुलना करते हुए वे प्रथम के लिए 'पोराण' (प्राचीन) शब्द का प्रयोग करते हैं। अत: इससे हमें यही मानना उचित है कि उपज का दसवाँ भाग बुद्ध-काल में राजांश के रूप में लिया जाता था। छठे भाग की जो बात कही गई है,[4] उसे उसके उत्तर काल की समझनी चाहिए। विशेष अवस्थाओं में राजा भूमि-कर से लोगों को मुक्त भी कर देता था।[5]

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २६७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९८।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४, ४८३।

३. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५४, पद-संकेत १।

४. देखिये हिस्ट्री एंड कल्चर ऑव दि इंडियन पीपुल, जिल्द दूसरी, पृ० ५९८।

५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १२१।

कृषि के साथ गोरक्षा का अटूट और अनिवार्य सम्बन्ध है। इसीलिए सम्भवतः दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त तथा मज्झिम-निकाय के एसुकारि-सुत्तन्त में 'कसि-गोरक्खे' (कृषि-गोरक्ष्य) का सार्थक द्वन्द्व समास प्रयुक्त किया गया है।[1] बुद्ध-काल में गौ का सम्मान था। स्वयं भगवान् बुद्ध ने गायों को माता, पिता, भाई और बन्धु-बान्धवों की तरह परम मित्र और अन्नदा, वलदा, वर्णदा तथा सुखदा बताया था।[2] बुद्ध-काल में समृद्ध लोग गौओं को चादर उढ़ाते थे और उन पर काँसे की कण्ठियाँ बाँधते थे।[3] गौ पशु-पालन का प्रतीक है और बुद्ध-काल में हम पशु-पालन के कार्य को अत्यन्त उन्नत और व्यवस्थित अवस्था में पाते हैं। प्रत्येक गाँव में निश्चित भूमि गोचर-भूमि के रूप में अलग छोड दी जाती थी जिस पर उस गाँव के सब पशु चर सकते थे।[4] प्रतिदिन गोप या गोपालक (ग्वाला) आकर प्रत्येक घर के पशुओं को ले जाता था और चरागाह में दिन भर उन्हें चराने के बाद फिर वापस घरों पर पहुँचा जाता था। इसी प्रकार का एक ग्वाला, जिसका नाम नन्द था, भगवान् बुद्ध को एक बार मार्ग में गंगा के किनारे पशु चराते मिला था, जिसने भगवान् के उपदेश को सुना था। ग्वाला संविग्न होकर प्रव्रज्या के लिए याचना करने लगा, परन्तु भगवान् ने उससे कहा, "नन्द, पहले तुम मालिक की गायें लौटा आओ।" ग्वाले ने जब कहा कि गायें तो अपने बछड़ों के प्रेम में बँधी स्वयं चली जायेंगीं, तो सामाजिक नीति के मर्म को समझने वाले भगवान् ने फिर उससे कहा था, "तुम अपने मालिक की गाएँ तो

---

१. मज्झिम-निकाय के महादुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त और अंगुत्तर-निकाय के वोण-सुत्त में कृषि और गोरक्षा के साथ-साथ वाणिज्य को भी रक्खा गया है। मिलाइये "कृषि-गोरक्ष्य-वाणिज्यम्"। गीता १८।४४।

२. ब्राह्मण-धम्मिय-सुत्त (सुत्त-निपात)।

३. दीघ-निकाय के महासुदस्सन-सुत्त में कहा गया है कि महासुदर्शन नामक क्षत्रिय राजा के पास अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के अलावा, काँसे की घंटी पहने, चादर ओढ़े, दूध देने वाली चौरासी हजार गायें थीं। "चतुरासीतिधेनुसहस्सानि अहेसुं दुकूलसन्दनानि कंसूपधारणानि।"

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १९३-१९४।

लौटा कर ही आओ।[1]" ग्वालों के जीवन का भगवान् बुद्ध को गहरा और सूक्ष्म ज्ञान था। एक चतुर गोपालक के ग्यारह गुणों का वर्णन, जिनके द्वारा वह गोसमूह की रक्षा करने के योग्य होता है, भगवान् ने मज्झिम-निकाय के महा-गोपालक सुत्तन्त में किया है। उन्होंने बताया है कि एक चतुर गोपालक को किस प्रकार गायों के वर्ण और लक्षण को जानने वाला होना चाहिए, घाव को ढाँकने वाला, काली मक्खियों को हटाने वाला, मार्ग, चरागाह और पानी को जानने वाला, सब दूध को न दुहने वाला और गायों के पितर और स्वामी जो वृषभ हैं, उनकी अधिक सेवा करने वाला होना चाहिए, आदि। इसी प्रकार इसी निकाय के चूल-गोपालक सुत्तन्त में भगवान् ने मगध के एक मूर्ख और एक बुद्धिमान् ग्वाले की उपमा देकर बताया है कि किस प्रकार मूर्ख ग्वाले ने वर्षा के अन्तिम मास में बेघाट गायें विदेह देश की ओर हाँक दीं जिससे सब गायें गंगा की बीच धार में भँवर में पड कर बह गईं, जब कि बुद्धिमान् ग्वाले ने घाट आदि के बारे में ठीक प्रकार सोच कर उन्हे हाँका, जिससे वे कुशलतापूर्वक पार चली गईं। कुछ ग्वाले भगवान् बुद्ध के समय में ऐसे भी होते थे जो स्वयं अपनी गायें और अन्य पशु रखते थे। धनिय गोप ऐसा ही समृद्ध ग्वाला दिखाई पड़ता है, जिसने अपने साफ-सुथरे घर, पशु-धन और सुखी जीवन का वर्णन इस प्रकार स्वयं भगवान् के सामने किया था, "भात मेरा पक चुका है, दूध दुह लिया गया है। मही (गण्डक) नदी के तीर पर स्वजनो के साथ वास करता हूँ ....मक्खी-मच्छर यहाँ नही है....कछार में उगी घास को गायें चरती हैं.. मैं आप अपनी ही मजदूरी करता हूँ ...मेरे तरुण बैल और बछड़े है। गाभिन गायें है और तरुण गायें भी और सब के बीच वृषभराज भी है।"[2] हम जानते है कि १२५० गायों को आगे किए मेण्डक गृहपति ने भिक्षु-संघ सहित भगवान् का अंगुत्तराप प्रदेश में धारोष्ण दूध से सत्कार किया था।[3] भोजन के समय से पूर्व किसी अतिथि के आजाने पर अक्सर उसे पहले दूध पिला कर बाद में भोजन के समय भोजन कराया जाता

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५२६ (पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त)।

२. धनिय-सुत्त (सुत्त-निपात)।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४९-२५०।

था।[1] देश में पंच गोरसों—दूध, दही, तक्र, नवनीत और घी—की कमी नहीं थी। गोपालों के समान अजपाल भी होते थे जो बकरियों और भेड़ों को चराते थे,[2] और उनकी ऊन को इकट्ठा करते थे जिससे ऊन सम्बन्धी गृह-शिल्प चलता था और बहुमूल्य कम्बल आदि बनते थे, जिनका उल्लेख हम व्यापारिक भूगोल का विवेचन करते समय पाँचवें परिच्छेद में करेंगे।

कृषि-गोरक्षा के बाद बुद्धकालीन भारत के तीन मुख्य पेशे वाणिज्य, शिल्पकारी और मजदूरी थे। राज-सेवा भी उस समय निःसन्देह एक महत्त्वपूर्ण पेशा था। कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।५) से मालूम पड़ता है कि अनेक मनुष्य उस समय राज-सेवा में (राज पोरिसे) उत्साह रखते थे और राजा उन्हें उचित भत्ता और वेतन (भत्त-वेतनं) देकर सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करते थे। राज-सेवा से सम्बन्धित मुख्य महत्त्वपूर्ण पद पुरोहित, अमात्य (अमच्च) और सेनापति के थे। राज-सेना से सम्बन्धित १३ पेशों का उल्लेख हमे सामञ्ञफल-सुत्त में मिलता है। सिपाहियों और सेनाध्यक्षों की नियुक्ति में योग्यता का ध्यान रक्खा जाता था, वर्ण आदि का नहीं। वाराणसी का एक पुरोहित-पुत्र, जो श्रेष्ठ धनुर्धर (धनुग्गहानं अग्गो) था, सेनाध्यक्ष बनाया गया था।[3] अध्यापक (अज्झापक) का पेशा भी उस समय आदरणीय माना जाता था। विद्यार्थी या तो गुरुओं को शुल्क के रूप में कुछ देते थे या शारीरिक सेवा द्वारा शिक्षा के ऋण से उऋण होते थे।[4] राजा की ओर से कर संग्रह करने वाले लोग भी नियुक्त थे, जो 'निग्गाहका' कहलाते थे। राजसेवा से सम्बन्धित अन्य अनेक पेशे भी उस समय थे, जिनके विवरण में तत्कालीन शासन-व्यवस्था में जा पड़ने के भय से हम नहीं जा सकते।

वाणिज्य (वणिज्जा) और शिल्पों (सिप्पानि) सम्बन्धी उद्योग-धन्धों का

---

१. धानंजानि-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।७)।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३६३।

३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२७; सुत्त-निपात के वासेट्ठ-सुत्त से हमें पता चलता है कि योधाजीवी होने के अतिरिक्त ब्राह्मण लोग बुद्ध-काल में अन्य अनेक पेशे भी करते थे।

४. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७७।

विवरण हम आगे के परिच्छेद में देंगे, क्योंकि उनका सम्बन्ध आर्थिक और व्यापारिक भूगोल से ही अधिक है। मानव-भूगोल की दृष्टि से यहाँ इतना कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि बुद्ध-काल में यद्यपि सभी शिल्पों का आदर होता था और वर्णों के साथ उनका सम्बन्ध नहीं जुड़ा था, परन्तु फिर भी बाँस और बेंत का सामान बनाने वाले, नाई, कुम्हार, जुलाहे और चमड़े का काम करने वाले "हीन शिल्प" (हीनं सिप्पं) करने वालों की श्रेणी में आते थे, ऐसा हमें विनय-पिटक के पाचित्तिय काण्ड (द्वितीय पाचित्तिय) से विदित होता है। ब्रह्मजाल-सुत्त (दीघ० १।१) में मिथ्या जीविकाओं के द्वारा अनेक लोगों को रोजी कमाते दिखाया गया है (मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेन्ति) जिससे भी उस समय हीन समझे जाने वाले अनेक पेशों पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार की हीन जीविकाओं के रूप में अंग-विद्या, उत्पाद-विद्या, मणि-लक्षण, वस्त्र-लक्षण, अनेक प्रकार की भविष्यवाणियाँ करना, अंजन तैयार करना, नाक में तेल डालकर छिकवाना आदि पेशों की लम्बी सूची दी गई है, जिनका वस्तुतः शिल्पकारी से कोई सम्बन्ध नहीं है। बुद्ध-काल के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कोई व्यक्ति किसी समय किसी पेशे को छोड़कर दूसरे पेशे को कर सकता था और इससे उसकी सामाजिक स्थिति मे कोई अन्तर नही पड़ता था। उग्रसेन श्रेष्ठिपुत्र एक रस्सी पर नाच दिखाने वाली नटिनी के प्रेम में फँस कर उसी काम को करने लगा था, परन्तु इससे वह अपने परिवार से बहिष्कृत नहीं किया गया था।[1] इसी प्रकार एक सेठ (सेट्ठि) को हम दर्जी और कुम्हार का पेशा करते और अपनी उच्च सामाजिक स्थिति बनाये देखते हैं।[2] एक जातक-कथा में एक ऐसे क्षत्रिय का उल्लेख है जो पहले कुम्भकार था, फिर डलिया बनाने वाले का काम करने लगा और अन्त में वह मालाकार और रसोइया भी बना।[3] ब्राह्मणों को हम खेती करते[4] और व्यापार करते[4] भी बुद्ध-काल में देखते हैं। ऐसे अन्य अनेक उदाहरण भी दिये जा

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ ५९।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३७२।

३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २९०।

४. कसिभारद्वाज-सुत्त (सुत्त-निपात); जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६८।

सकते हैं। मज्झिम-निकाय के घटिकार-सुत्तन्त में हम देखते हैं कि घटिकार नामक एक कुम्हार का ज्योतिपाल नामक एक ब्राह्मण तरुण प्रिय मित्र था और ज्योतिपाल उसे "सौम्य घटिकार!" कह कर पुकारता था। अब हम बुद्धकालीन भारत के मजदूरों की अवस्था पर आते हैं।

पहले हम खेतों पर काम करने वाले मजदूरों को लेते हैं। जातक के विवरणों से मालूम पड़ता है कि खेतों पर काम करने के लिए मजदूरी पर आदमी रक्खे जाते थे।[1] खेतों की रखवाली करने के लिए जो आदमी नियुक्त किए जाते थे, उन्हें 'खेतरक्खका'[2] या 'खेत्तगोपका'[3] कहा जाता था। इस प्रकार खेतों पर काम करने के लिए जो आदमी मजदूरी पर रक्खे जाते थे, उन्हें मजदूरी अक्सर अनाज के रूप में दी जाती थी,[4] यद्यपि मासक आदि के रूप में 'भतकों' को मजदूरी देने के उल्लेख भी प्राप्त हैं।[5] भद्दसाल जातक से स्पष्ट विदित होता है कि दिन भर काम करने के बाद सन्ध्या समय 'भतक' अपने घर चले जाते थे। खेती के अलावा अन्य काम के लिए भी मजदूरी पर लोग रक्खे जाते थे। कई जातकों में हम ऐसे मजदूरों को प्रतिदिन एक मासक या पण का चतुर्थ भाग मजदूरी के रूप में मिलते देखते है।[6] यद्यपि बुद्ध-काल में इन छोटे-छोटे सिक्कों की क्रय-शक्ति भी काफी अधिक थी, फिर भी बुद्ध-काल में मजदूरों और श्रमिकों को हम आर्थिक रूप से अच्छा जीवन व्यतीत करते नहीं देखते। बुद्धकालीन मजदूर (भतक) कठिनता से ही जीवन व्यतीत करता था। गंगमाल जातक में कहा गया है, "भतिं कत्वा किच्छेन जीवति।" अर्थात् "मजदूरी कर के कठिनता से ही जीया जीता है।" काम कर देने के बाद वह अपनी मजूरी पाने के लिए किस प्रकार

---

१. देखिये विशेषतः जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २७७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६२।

२. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११०; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६३; जिल्द छठी, पृष्ठ ३३६।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५२; जिल्द चौथी, पृष्ठ २७७।

४. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४४६; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २१२।

५. देखिये आगे पाँचवें परिच्छेद में मुद्रा और विनिमय का विवेचन।

६. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४७५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२५।

प्रतीक्षा करता था, इसे धर्मसेनापति सारिपुत्र ने पूरी संवेदनशीलता के साथ देखा था। तभी तो अपने अनासक्त जीवन का वर्णन करते हुए उन्होंने अपनी तुलना एक मजदूर (भतक) से करते हुए कहा है, "न मुझे मरने की चाह है और न जीने की। काम करने के बाद अपनी मजूरी पाने की प्रतीक्षा करने वाले नौकर के समान मैं तो अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" "मरणं नाभिकंखामि नाभिकंखामि जीवितं। कालं च पटिकंखामि निब्बिसं भतको यथा।"[1]

मजदूरी पर काम करने वालों के अलावा एक दूसरा वर्ग श्रमिकों का बुद्ध-काल में और था, जिन्हें 'कम्मकर' और 'दास' कह कर पुकारा जाता था। ये पुरुष भी होते थे और स्त्रियाँ भी। इनका भाग्य 'भतको' की अपेक्षा अधिक दुःख-पूर्ण जान पड़ता है। अधिकतर वे घरेलू नौकरों के रूप मे होते थे और हर समय घर में रहते थे या बाहर भी स्वामी के कार्य से जाते थे। इनके साथ दुर्व्यवहार के उदाहरण मिलते हैं। श्रावस्तीवासिनी गृहपत्नी वैदेहिका ने अपनी दासी काली को जिस प्रकार पीटा था, उस प्रकार की पिटाई अक्सर बुद्ध-काल में दासियों को सहन करनी पड़ती थी।[2] भिक्षुणी पुण्णिका, जो पहले पनिहारिन थी, अपने पूर्व के जीवन के सम्बन्ध में जब सोचती है, तो उसे अनिवार्य रूप से अपनी स्वामिनी के द्वारा पीड़ित होने की और कठिन शीत में पानी में उतरने की याद आती है।[3] नामसिद्धि जातक में हम एक दासी को रस्सी से पिटते देखते है। अट्ठकथाओ में ऐसी दासियों तक के उदाहरण मिलते है जिन्होंने अपनी स्वामिनियों के दुर्व्यवहार से तंग आकर आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया। बड़े-बड़े यज्ञों तक में, जिन्हे लोग पुण्य अर्जन करने के लिए करते थे, दास-दासियों को दण्ड और भय से तर्जित होकर, आँसू गिराते हुए, काम करना पड़ता था। इन अश्रुमुख निरीह प्राणियों ने तथागत की करुणा को कितना आकृष्ट

---

१. थेरगाथा, गाथा १००३ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); मिलाइये मिलिन्द-प्रश्न, पृष्ठ ५५ (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद)।

२. ककचूपम-सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।१)।

३. उदकहारी अहं सीते सदा उदकमोतरिं। अय्यानं दण्ड-भय-भीता वाचादोसभयट्टिता। थेरीगाथा, गाथा २३६ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

किया था, इसे दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के यञ्ञ-सुत्त में भली प्रकार देखा जा सकता है। दासो और दासियो के पुत्र भी दास और दासी ही होते थे।[१] इस प्रकार यह प्रथा परम्परागत रूप से चलती थी। खण्डहाल जातक से पता लगता है कि कुछ आदमी भय के कारण भी दास हो जाते थे। राजा जिन लोगो को युद्ध मे बन्दी बनाते थे, वे भी अक्सर दास बना कर रक्खे जाते थे। इसी प्रकार दण्ड के रूप मे भी लोगो को दास बना लिया जाता था। कुलावक जातक मे हमे ऐसा ही एक उदाहरण मिलता है। दासो को अक्सर दान या भेट मे भी दिया जाता था। जीवक ने साकेत के श्रेष्ठि (सेठ) की पत्नी के सात वर्ष पुराने सिर दर्द को ठीक किया था। इसके बदले मे उसे सोलह हजार अशर्फी मिलने के अलावा एक दास और एक दासी भी भेंट-स्वरूप मिले थे।[२] राजाओ और ब्राह्मण-महाशालो की तो कोई बात ही नही, साधारण गृहस्थ तक भी बुद्ध-काल मे दास रखते थे।[३] स्वामियो के घर से दासो के भागने के भी उदाहरण मिलते है[४] और इस प्रकार के वर्णन भी मिलते है जिनसे प्रकट होता है कि कुछ मूल्य देकर या विशेष अवस्थाओ मे दास मुक्त भी कर दिये जाते थे।[५] दासता से मुक्ति उसी प्रकार सुख और सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती थी जिस प्रकार ऋण या रोग से मुक्त हो जाना या किसी वीरान मरु प्रदेश को पार कर जाना, या बन्धनागार से छूट जाना। दास पुरुष का तो वह निर्वाण ही था। निर्वाण की उपमा इसीलिए दास की मुक्ति से दी गई है।[६] रायस डेविड्स् ने यह कहा है कि बुद्ध-काल मे दासो के साथ दुर्व्यवहार नही होता था, और उनकी सख्या भी नगण्य थी।[७] दासो के साथ जो दुर्व्यवहार होता था, उसके कुछ

---

१. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २२५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४०९।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६८।

३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १०५; जिल्द छठी, पृष्ठ ११७।

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४५२।

५. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१३; जिल्द छठी, पृष्ठ ५४७।

६. महा-अस्सपुर-सुत्तन्त (मज्झिम० १।४।९)।

७. "For the most part the slaves were household servants, and not badly treated; and their numbers seem to have been

उदाहरण हम पहले दे चुके हैं और उनकी संख्या अल्प नहीं थी, यह इस बात से विदित होगा कि ५०० दासियाँ तो अकेली विशाखा ही अपने पिता के घर से लाई थी,[1] और कौशाम्बी-नरेश उदयन के रनिवास में ५०० दासियाँ थीं। पिप्पलि माणवक के यहाँ दासों के पूरे चौदह गाँव थे जिनकी संख्या उन्ही के शब्दों में इतनी अधिक थी कि "यदि तुममें से एक-एक को पृथक्-पृथक् दासता से मुक्त करें, तो सौ वर्ष में भी न हो सकेगा।[2]" अन्य अनेक उदाहरण भी इसी प्रकार के दिये जा सकते हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने समतावादी धर्म के प्रचार से समाज में जिस व्यापक समभाव और पर-शोषण-विरति की भावनाओं को उत्पन्न किया और दास-दासी-प्रतिग्रहण को अनुचित बतलाया, उन सब का समाज पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। अनाथपिण्डिक की दासी पुण्णिका दासी-भाव से मुक्त कर दी गई और उसने श्रेष्ठि की पुत्री का पद पाया। बुद्ध-धर्म की महिमा से ही खुज्जुत्तरा दासी से राज-माता बनी, और न जाने कितने अज्ञात दास-दासी-पुत्र उन लोगो के द्वारा मुक्त किये गये जो भगवान् बुद्ध के प्रभाव में आये। पिप्पलि माणवक के समान न जाने कितने बुद्ध-प्रभाव में आने वाले मनुष्यो ने अपने दासों से कहा, "अब तुम अपने आप सिरो को धोकर मुक्त हो जाओ।"[3] इस प्रकार भगवान् बुद्ध के प्रभाव से यद्यपि दास-दासियों के भाग्य में एक नया परिवर्तन आया और दास-दासी-प्रतिग्रहण को बुरा मानने की विचारधारा समाज में चली, परन्तु फिर भी जब कि समाज में चारों ओर सुख और समृद्धि थी, किसानो के कोट्ठागार धन-धान्य से और सेठो के निष्क-हिरण्य से भरे हुए थे, तो दास-दासियो के रूप में सत्वों का यह वाणिज्य (सत्त-वणिज्जा), मनुष्यों का यह विक्रय (मनुस्स-विक्कय) और विशेषतः भय-तर्जित दासों और कर्मकरों की आँखो से गिरते हुए आँसू, हमारे हृदय पर पीड़ा की एक रेखा अवश्य छोड़ जाते है।

---

insignificant." बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ४० (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०); रायस डेविड्स् के इस मत का अनुसरण या अन्धानुसरण करते हुए डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने भी शब्दशः लिख दिया है। "इनके अतिरिक्त दास भी थे......उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था। इनकी संख्या अधिक न थी।" उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ १९१

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३०८।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ ४१।

३. उपर्युक्त के समान।

पाँचवाँ परिच्छेद

आर्थिक और व्यापारिक भूगोल

बुद्ध-काल में भारतीय जनता का आर्थिक जीवन सुखी और समृद्ध था। अनेक बुद्धकालीन मनुष्यों, विशेषतः सेठों, की प्रभूत सम्पत्ति का वर्णन मिलता है। चम्पा-निवासी श्रेष्ठि-पुत्र सोण कोटिविंश बीस करोड़ का धनी था।[1] अस्सी गाड़ी अशर्फियाँ (हिरण्य) उसके यहाँ थीं।[2] साकेत के सेठ धनंजय ने, अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार, अपनी पुत्री विशाखा के लिए ९ करोड़ के मूल्य से महालता नामक आभूषण को बनवाया था और उसके स्नान-चूर्ण के मूल्य के लिए ५४०० गाड़ी धन दिया था। इसी विशाखा के लिए उसके श्वसुर मृगार श्रेष्ठी ने केवल एक आभूषण एक लाख का बनवाया था। श्रावस्ती के प्रसिद्ध व्यापारी अनाथपिण्डिक ने जेतवन की सारी भूमि को सोने की मुहरों से किनारे से किनारा मिला कर ढाँक कर जेत कुमार से उसे खरीदा था और इसमें उसकी १८ करोड़ मुहरें लगी थीं।[3] कुल मिला कर सेठ को ५४ करोड़ धन जेतवनाराम के बनवाने में व्यय करना पड़ा था।[4] धम्मपदट्ठकथा की 'विसाखाय वत्थु' में कहा गया है कि विशाखा अपने घर से दहेज के रूप में ताँबे, चाँदी और सोने के बर्तनों की पाँच-पाँच सौ गाड़ियाँ, इतनी ही गाड़ियाँ रेशमी और बहुमूल्य वस्त्रों की और ६०,००० बैल और इतनी ही संख्या की

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।

२. वहीं, पृष्ठ २०४।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४६१; जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११९ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३; जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११९-१२१ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

गाये लेकर आई थी। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार विशाखा मृगारमाता ने १८ करोड़ के मूल्य से पूर्वाराम प्रासाद बनवाया था। संयुत्त-निकाय में श्रावस्ती के दो कंजूस सेठों के मर जाने का उल्लेख है, जिन्होने क्रमशः अस्सी लाख और सौ लाख अशर्फियाँ छोड़ी थी। इन दोनो सेठो के सन्तान-हीन होने के कारण यह सब धन राजकोष में चला गया था।[1] इसी प्रकार बब्बु जातक में कहा गया है कि काशी देशके एक धनवान् सेठ का गाड़ा हुआ खजाना ४० करोड के सोने का था। असम्पदान जातक में मगध के संख नामक एक सेठ का उल्लेख है जिसके पास १८ करोड सम्पत्ति थी और इतनी ही सम्पत्ति उसके एक मित्र वाराणसी के सेठ की बताई गई है। 'असीति कोटिं विभवो सेट्ठि' अर्थात् अस्सी करोड सम्पत्ति वाले सेठो के अनेक विवरण हमे जातक-कथाओं मे मिलते है। पेतवत्थु की अट्ठकथा[2] मे बताया गया है कि राजगृह के एक व्यापारी के पास इतनी सम्पत्ति थी कि यदि प्रतिदिन एक हजार मुद्राएँ व्यय की जाती तब भी वह समाप्त नही हो सकती थी। धम्मपदट्ठकथा में मगध राज्य के कुम्भघोसक नामक व्यक्ति का उल्लेख है जो फटे पुराने कपड़े पहनता था, परन्तु जिसके पास उसके पिता के द्वारा छोडी हुई ४० करोड सम्पत्ति जमीन मे गडी हुई थी। वाराणसी के श्रेष्ठिपुत्र यश और कौशाम्बी के घोषक, कुक्कुट और पावारिक (पावारिय) नामक सेठो की इसी प्रकार प्रभूत सम्पत्ति का वर्णन किया गया है। सुमगलविलासिनी[3] के अनुसार वही सेठ बुद्ध-काल मे वास्तविक रूप से धनवान् माना जाता था जिसके पास ४० करोड धन हो और जो प्रतिदिन ५ अम्मण (अनाज नापने का एक माप) से लेकर एक तुम्ब (अनाज नापने का एक अन्य माप) तक कार्षापणो की खरीद-बिक्री करता हो।

बड़े-बड़े सेठ (सेट्ठि) और वणिक् (वाणिजा) ही नही, अन्य लोगों की भी प्रभूत सम्पत्ति का वर्णन मिलता है। पिप्पलि माणवक (बाद मे आर्य महाकाश्यप) जो मगध देश के महातित्थ (महातीर्थ) नामक ग्राम के निवासी थे, ८७ करोड़ सम्पत्ति के स्वामी थे। इसी प्रकार सारिपुत्र के यहाँ ५०० सोने की पाल-

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ८०-८२।

२. पृष्ठ २-९।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

कियाँ और महामोग्गल्लान के यहाँ ५०० गाड़ियाँ थीं। उरुवेला के सेनानी निगम की तरुणी सुजाता ने बरगद के पेड़ के देवता से यह मनौती की थी कि यदि प्रथम गर्भ में वह पुत्र प्रसव करेगी तो प्रति वर्ष एक लाख के व्यय से उसकी पूजा करेगी।[1]

अनेक बुद्धकालीन ब्राह्मण-महाशालों की भी प्रभूत सम्पत्ति के वर्णन मिलते हैं। उन्हें अक्सर 'अड्ढा', 'महद्धना' और 'महाभोगा' कहकर पुकारा गया है। अनेक जातक-कथाओं में ऐसे ब्राह्मणों के उल्लेख हैं जिन्हें 'असीति-कोटि-धन-विभवा' अर्थात् अस्सी करोड़ धन-वैभव वाले कहा गया है।[2] आचार्य बुद्धघोष ने परमत्थ-जोतिका[3] में ब्राह्मण-महाशाल की परिभाषा करते हुए ऐसे ब्राह्मणों को महाशाल (महासाल) बताया है जिनके पास अस्सी करोड धन हो। अंग देश के चम्पा नगर का स्वामी सोणदण्ड, जिसे वह नगर मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार की ओर से दान के रूप में मिला हुआ था, इसी प्रकार का ब्राह्मण-महाशाल था। इसी प्रकार मगध देश के खाणुमत गाँव का ब्राह्मण कूटदन्त था। कोसल देश में तो ऐसे ब्राह्मण महाशाल काफी सख्या में थे। ओपसाद का चंकि ब्राह्मण, इच्छानंगल का तारुक्ख, उक्कट्ठा का पोक्खरसादि, सालवतिका का लोहिच्च ये सब ब्राह्मण महाधनी और महा-ऐश्वर्य वाले थे।

जहाँ तक कृषकों की अवस्था का सम्बन्ध है, हम मगध के उर्वर खेतों और वहाँ के शस्यसम्पन्न, अकटक, अपीड़ित, क्षेमयुक्त और हस्तिकाय, अश्वकाय और रथकाय से युक्त, हिरण्य-सुवर्ण-मय, द्रव्य-सम्भार-सुलभ (दब्बसम्भारसुलभा) जनपदों को देख चुके है। धनधान्यपूर्ण, समृद्ध और स्फीत बुद्धकालीन नगरो के चित्र को भी हम देख चुके है। श्रावस्ती में ऐसी कोई वस्तु नही थी जो मिल न सकती हो। आपण जैसे निगमों का व्यस्त व्यापारिक जीवन था। वाराणसी का कला-कौशल और धन-वैभव अनुपम था। मिथिला के चार महाद्वारों के

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४९, ४६६; जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७२; जिल्द चौथी, पृष्ठ १५, २२।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१३; मिलाइये सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

बाहर 'यवमज्झक' बाजारो की रचना आधुनिक योजनाबद्ध जैसी लगती है। सुत्त-निपात मे धनिय गोप के सुखमय जीवन को भी हमने देखा है। पंच गोरस सर्वत्र सुलभ थे। लिच्छवियो की वैशाली के भरे हुए ७७०७ धान्यागारों और अनाज से भरे हुए कोठो के कारण ही 'थुल्लकोट्ठित' नाम प्राप्त करने वाले कुरु राष्ट्र के प्रसिद्ध निगम को देखकर यह कहना कुछ अधिक नही होगा कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल मे भारतीय जनता का आर्थिक जीवन सुखी और समृद्ध था और देश मे स्वर्ण-रजत, धन-धान्य और पशु-धन की कमी नही थी। महापरिनिब्बाण-सुत्त मे कहा गया है कि कुशावती नगरी 'अशन करो, पान करो, भोजन करो', 'अस्नाथ', पिवथ, खादथ', इन तीन शब्दो से गुंजायमान रहती थी। ऐसा ही अन्य अनेक बुद्धकालीन महानगरो के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है। दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त मे कहा गया है, "मनुष्य हर्षित, मोदित, गोद मे पुत्रो को नचाते, खुले घर विहरते थे।[1] इसे सुखी और समृद्ध आर्थिक जीवन का हम प्रतीक मान सकते है।

शिल्पकारी का बुद्धकालीन समाज के जीवन मे महत्त्वपूर्ण और आदरणीय स्थान था। एक ओर शिल्पकारी कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर आधारित थी तो दूसरी ओर कृषकों की आवश्यकताओ की पूर्ति कर वह तत्कालीन ग्रामीण जीवन को आत्मभरित भी बनाने वाली थी। बुद्धकालीन व्यापार और उद्योग इन्ही शिल्पकारियो पर और कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर निर्भर थे। छोटा हो या बडा, सब को अपने प्रारम्भिक जीवन मे बुद्ध-काल मे यह चिन्ता रहती थी, "बिना शिल्प के जीविका करना मुश्किल है। क्यो न मै शिल्प सीखूँ।[2]" लडकी देते समय तो यह विशेष रूप से देखा जाता था कि लडका कोई शिल्प जानता है या नही। जिस प्रकार वकहार जनपद के बहेलिये ने अपनी लडकी चापा को उपक आजीवक को देने से पूर्व उससे पूछा था, "क्या कोई शिल्प भी जानते हो ?[3]" उसी प्रकार सुप्रबुद्ध शाक्य

---

१. मूल पालि इस प्रकार है, "मनुस्सा च मुदा मोदमाना उरे पुत्ते नच्चेन्ता अपारुतघरा मञ्ञे विहरिंसु।"

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।

३. जानासि पन किंचि सिप्पं ति, थेरीगाथा, पृष्ठ ७३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

भी तब तक अपनी पुत्री भद्दा कात्यायनी को कुमार सिद्धार्थ को देने को तैयार नही हुआ था जब तक शिल्पो मे भी उन्होंने अपनी दक्षता का पूरा परिचय नही दे दिया। शाक्य लोग इस बात से बडे चिन्तित हो गये थे कि कुमार सिद्धार्थ शिल्पों के सीखने मे मन नही लगाते, परन्तु जब कुमार ने कई विशेष शिल्पो मे दक्षता दिखाई, तो उन लोगो की शंका दूर हुई।[1] कोसलराज प्रसेनजित् ने, जैसा हम पहले देख चुके हैं, तक्षशिला मे शिक्षा पाई थी और वहाँ उसने शिल्पो को भी सीखा था। राजकुमारों के लिए उस समय शिल्प सीखना प्राय. अनिवार्य माना जाता था। पुरुषों के समान स्त्रियो के लिए भी शिल्प, गृह-शिल्प, सीखना आवश्यक माना जाता था। भगवान् बुद्ध ने विवाह-योग्य बालिकाओ को उपदेश देते हुए उनसे कहा था कि वे जिस घर मे जायँ और वहाँ जो कपास या ऊन के गृहशिल्प चलते हो, उनमे उन्हे पूरी दक्षता और कुशलता प्राप्त करनी चाहिए।[2] अपने हाथ से काम करने मे स्त्रियाँ उस समय कितना गौरव समझती थी, यह इस बात से जाना जा सकता है कि महापजावती गोतमी ने अपने हाथ से कते-बुने एक धुस्से के जोडे को भगवान् को अर्पित किया था।[3]

अनेक प्रकार की शिल्पकारियाँ (सिप्पायतनानि) भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में प्रचलित थी। सामञ्ञफल-सुत्त (दीघ० १।२) मे शिल्पकारो के २५ प्रकार इस प्रकार वर्णित है.—

१. हत्थारोहा—हाथी की सवारी करने वाले।

२. अस्सारोहा—अश्वारोही।

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७६ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)। इसी प्रकार ललितविस्तर में उल्लेख है कि शुद्धोदन ने जब दण्डपाणि शाक्य से प्रार्थना की कि वह अपनी कन्या को कुमार सिद्धार्थ के लिये दे, तो दण्डपाणि ने कहा, "अस्माकं चायं कुलधर्मः शिल्पज्ञस्य कन्या दातव्या, नाशिल्पज्ञस्येति। कुमारश्च न शिल्पज्ञो....तत्कथमशिल्पज्ञायाहं दुहितरं दास्यामि"। पृष्ठ १४३।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३७-३८; जिल्द चौथी, पृष्ठ २६५; मिलाइये आनन्द कुमारस्वामी तथा आई० बी० हॉर्नर : दि लिविंग थॉट्स् ऑव गौतम दि बुद्ध, पृष्ठ १२३।

३. पपंचसूदनी, बुद्धचर्या, पृष्ठ ७१ में उद्धृत।

३. रथिका—रथ को चलाने वाले।
४. धनुग्गहा—धनुष चलाने वाले।
५-१३. चेलका. . .योधिनो—युद्ध मे विभिन्न काम करने वाले लोग।
१४. दासकपुत्ता—दास लोग।
१५. आलारिका—रसोइया।
१६. कप्पका—नाई।
१७. नहापका—स्नान कराने वाले।
१८. (सूदा या सुदा)—हलवाई।
१९. मालाकारा—माला बनाने वाले।
२०. रजका—धोबी।
२१. पेसकारा—जुलाहे (रँगरेज भी)।
२२. नलकारा—बेत और बाँस की वस्तुएँ बनाने वाले।
२३. कुम्भकारा—कुम्हार।
२४ गणका—हिसाब-किताब की जाँच करने वाले।
२५ मुद्दिका—मुनीम।

उपर्युक्त शिल्पो या पेशो के अतिरिक्त अन्य अनेक पेशे बुद्ध-काल में प्रचलित थे, जैसा कि उपर्युक्त सुत्त के ही इन शिल्पो के सगणन के बाद राजा अजातशत्रु के इन शब्दो से प्रकट होता है, "यानि वा पन अञ्ञानि पि एवगतानि पुथु सिप्पायतनानि", अर्थात् "इनके अलावा भी अन्य अनेक शिल्प-स्थान है।" पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर हम यहाँ कुछ मुख्य शिल्पो का उल्लेख करेंगे, जो बुद्ध-काल मे प्रचलित थे।

सबसे पहले वस्त्र-उद्योग से सम्बन्धित शिल्पो को लेते है। इस उद्योग से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण शिल्प बुनकरों (तन्तवाया या पेसकारा) का था। साथ में धुनने, कातने आदि के काम भी चलते थे। अनेक प्रकार के सूक्ष्म वस्त्र बुद्ध-काल में बनाये जाते थे, जैसे कि क्षौम या अलसी की छाल के सूक्ष्म वस्त्र (खोमसुखुमानं), कपास के सूक्ष्म वस्त्र (कप्पासिकसुखुमान), कौशेय सूक्ष्म वस्त्र (कोसेय्यसुखुमानं) और ऊन के सूक्ष्म वस्त्र (कम्बलसुखुमानं)।[1] कपास, कौशेय, क्षौम तथा कोटुम्बर नगर के

---

१. देखिये महासुदस्सन-सुत्त (दीघ० २।४)।

वस्त्रों का उल्लेख महाजनक जातक में है। "कप्पासकोसियं खोमकोटुम्बरानि च।" हम पहले देख चुके हैं कि काशी जनपद बुद्ध-काल में अपने बहुमूल्य वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। काशी के कोमल वस्त्र (कासिकं च मुदुवत्थं) अपनी ख्याति के लिये विदेशों तक प्रसिद्ध थे। उनका मूल्य एक लाख कहापण तक (सतसहस्सग्घनिकं) होता था। गन्धार और कोटुम्बर जनपद अपने बहुमूल्य कम्बलों और ऊनी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे।[1] सिवि के दुशालों[2] और बाहित या बाहिय के महीन वस्त्रों[3] को भी हम देख चुके हैं। शाक्य जनपद का खोमदुस्स नगर तो अपने क्षौम वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध ही था। कौशेय (कोसेय्य) वस्त्रों में उस समय सोने का काम भी किया जाता था। मणियों से जटित, दोनों ओर से पालिश किये, चिकने, नीले और लोहित वर्ण के काशी वस्त्रों को हम पहले देख ही चुके हैं।[4] राजाओं की पगड़ियाँ भी स्वर्णजटित वस्त्र (कंचनपट्ट) की होती थी।[5] और उनके हाथियों की झूलें भी इसी प्रकार सोने से जड़ी होती थीं।[6] बड़े-बड़े रोयें वाले आसन, चित्रित आसन, उजले कंबल, फूलदार बिछावन, सिंह-व्याघ्र आदि के चित्र वाले आसन, झालरदार आसन, काम किए हुए आसन, लम्बी दरी, हाथी के साज, घोड़े के साज, रथ के साज, कदलि मृग की खाल के बने आसन, चँदवेदार आसन,[7] आदि वस्तुएँ उस समय पूरी कलात्मकता के साथ बनाई जाती थीं। इसी प्रकार पलंगों पर बिछाने के लम्बे बालों वाले बिछौने, सफेद ऊनी बिछौने, फूल-बूटे कढ़े बिछौने, कदलि मृग-चर्म के बिछौने, यहाँ तक कि मसहरियाँ (उत्तरच्छदनानि) और लाल रंग के तकिये (लोहितकूपधानानि) भी उस समय बनते थे और समृद्ध लोग उनका उपयोग

---

१. देखिये तृतीय परिच्छेद में इन जनपदों के विवरण।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७२।

३. बाहितिय-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।८)।

४. महापदान-सुत्त (दीघ० २।१); महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३); संगीति-परियाय-सुत्त (दीघ० ३।१०)।

५. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३२२।

६. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४०४।

७. ब्रह्मजाल-सुत्त (दीघ० १।१)।

करते थे।[1] पाँच सौ के मूल्य तक के क्षौम-मिश्रित कम्बल बुद्ध-काल में बनाए जाते थे।[2] बड़े बड़े क़ालीन बनाने में सिद्धहस्त कारीगर उस समय थे। बोधि राजकुमार को हमने सुंसुमारगिरिनगर में तथागत का पाँवड़े बिछाकर स्वागत करते देखा है। हम पहले देख ही चुके है कि अभिजात कुल की स्त्रियाँ भी अपने हाथ से कातने-बुनने के काम को करना सम्माननीय समझती थी और बालिकाओं को उपदेश देते समय भगवान् बुद्ध ने उन्हें गृह-शिल्पों में दक्षता प्राप्त करने के लिए कहा था। रुई को धुनने के लिए स्त्रियाँ एक धनुषाकार यन्त्र का उपयोग करती थीं, जो आजकल के पीजन या धुनकी के समान होता था। जातक[3] में स्त्रियों के कपास धुनने के इस धनुष (इत्थीनं कप्पास-पोत्थन-धनुका) का उल्लेख है। महीन सूत कात कर (सुखुम सुत्तानि कन्तित्वा) उनकी गुण्डी (गुलं) बनाने की भी क्रिया बुद्ध-काल में ज्ञात थी[4]। कपड़े बेचने वाले व्यापारी 'दुस्सिक' कहलाते थे। बड़े-बड़े लोगों के यहाँ बहुमूल्य वस्त्रो के गोदाम भरे रहते थे। साकेत के धनंजय सेठ के यहाँ ऐसे कई 'दुस्स कोट्ठागार' (कपड़े के गोदाम) थे। कपडे के बुनने के साथ ही रँगने का काम भी बुद्ध-काल मे अत्यन्त उत्कृष्ट कला के साथ किया जाता था। विनय-पिटक में चीवर के रँगने के सम्बन्ध मे जो निर्देश दिये गये हैं[5], उनसे पता चलता है कि बुद्ध-काल में कपड़े के रँगाई की कला अत्यन्त उच्च स्तर पर थी। मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त से भी यही बात प्रकट होती है। काले (काल), नीले (नील), सफेद (सेत), पिंगल (किशमिशी), हल्दी के रंग के (हलिद्द), सुनहली (सोवण्ण), चाँदी के रंग के (रजतमय), लाल (रत्त), मंजिष्ठा रंग (मांजेट्ठ) जैसे अनेक रंगों का ज्ञान उस समय था और विभिन्न रंगों में कपड़े रँगे जाते थे। वाराणसी के नीले रंग के और कुसुम्भी बहुमूल्य वस्त्रों के सम्बन्ध में हम तृतीय परिच्छेद में कह चुके है। रजक या

---

१. देखिये महासुदस्सन-सुत्त (दीघ० २।४)।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७४।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४१।

४. देखिये जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३३६।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७७-२७८; देखिये बिहार की रंगाई के सम्बन्ध में भी, वहीं पृष्ठ ४५४-४५८।

रजकार (धोबी) लोग ही प्राय: रँगने का काम भी करते थे। रंगरेजों या कुशल चित्रकारों के द्वारा तख्तों और दीवालों पर स्त्री-पुरुषों के सुन्दर चित्र बनाये जाने का उल्लेख संयुत्त–निकाय के दुतिय गद्दुल-सुत्त में है। कपड़े सीने वाले दर्जी भी उस समय होते थे और वे 'तुण्णकारा' कहलाते थे। विनय-पिटक के महावग्ग में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के वस्त्रों के सम्बन्ध में जो निर्देश दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट विदित होता है कि सिलाई की कला एक उच्च रूप में बुद्ध-काल में लोगों को ज्ञात थी। दीघ-निकाय के कस्सप-सीहनाद-सुत्त से भी यही बात विदित होती है।

धातुकारी का काम करने वाले लोग साधारणत: कम्मार (कर्मार) कहलाते थे। कम्मार शब्द का प्रयोग मज्झिम-निकाय के संखारुप्पत्ति-सुत्तन्त में तो निश्चयत: सुवर्णकार के लिए ही किया गया है, परन्तु कुछ जातको में लुहार के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है। वैसे, साधारणत: लुहार के लिये लोहकार और सुनार के लिए सुवण्णकार, सोण्णकार या मणिकार शब्द का प्रयोग किया गया है। बुद्ध-कालीन स्वर्णकार अधिकतर बहुत धनवान् व्यक्ति होते थे। भिक्षुणी इसिदासी (ऋषिदासी) ने अपने एक पूर्व पुरुष-जन्म की बात सुनाते हुए कहा है, "मैं बहुत धनवाला स्वर्णकार थी।" "सुवण्णकारो अहं बहुतधनो।"[१] बुद्ध-काल में आभूषण बनाने की कला अत्यन्त उच्च कोटि की थी। अनेक प्रकार के आभूषण उस समय बनाये जाते थे, जैसे कि, चूडियाँ (हत्थत्थरण), मुद्रिकाएँ (मुद्दिका), मालाएँ, कुण्डल, मेखला, बिछुए (कायूर), आदि। मज्झिम-निकाय के धातु-विभंग-सुत्तन्त में पट्टिका, कुण्डल, ग्रैवेयक और सुवर्णमाला नामक आभूषणों के भी वर्णन हैं। विशाखा के महालता आभूषण का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। स्वर्ण के आभूषणो मे बहुमूल्य रत्न और मणियाँ भी जडी जाती थी।[२] रत्नो के बहुमूल्य हार बनाये जाते थे।[३] नील, पीत, लोहित, अवदात और पांडु रंग के सूत में पिरोई हुई, सुन्दर पालिश की हुई (सुपरिकर्मकृत) वैदूर्य मणियो के भी उल्लेख हैं।[४] मज्झिम-

---

१. थेरीगाथा, गाथा ४३५ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २३३।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८५।

४. महासकुलुदायि-सुत्तन्त (मज्झिम० २।३।७)।

निकाय के धातु-विभंग-सुत्तन्त में बताया गया है कि किस प्रकार एक चतुर स्वर्णकार अपनी अँगीठी (उल्कामुख) को बाँधता है, उसे लीपता है, सँडासी से सोने को पकड़कर अँगीठी में डालता है, समय-समय पर धौंकता है, समय-समय पर पानी से छींटे देता है, समय-समय पर उसे चुपचाप छोड देता है, आदि। इसी निकाय के संखारुप्पत्ति-सुत्त मे एक चतुर सुनार द्वारा भट्टी (उल्कामुख) मे सोनें को डाल कर उसे शुद्ध करने का उल्लेख है। ताँबे, काँसे और लोहे की धातुओ के अनेक प्रकार के बर्तनो के बनने के उल्लेख है। कृषि मे काम आने वाले औजार लोहे से बनाये जाते थे और महीन काम के लिए भी धातुओ का उपयोग होता था। सुइयाँ (सूची) बनाई जाती थी, जिनके पैनेपन और हल्केपन की प्रशंसा की गई है। सूचि जातक मे हम एक कुशल लुहार को वाराणसी के बाजार मे अपनी सुइयो को बेचते हुए और उनकी इस प्रकार प्रशसा करते देखते है, "कौन है जो यह सुई खरीदेगा? अकर्कश, गोल, अच्छे सुन्दर पत्थर से रगडी हुई, चिकनी तथा तीखी नोक वाली! कौन है जो यह सुई खरीदेगा? अच्छी तरह मँजी हुई, सुन्दर छेद वाली, क्रमश. गोल, (वस्त्र आदि मे) प्रवेश कर जाने वाली तथा मजबूत!' इसी प्रकार वीणा के तार (तन्ति) बडी सूक्ष्म कला के साथ बनाये जाते थे।[१] चापकार या उसुकार (वाण बनाने वाले लोग) जिस कुशलता से सीधे वाण बनाते थे और इस कार्य मे उन्हे जो विभिन्न क्रियाएँ करनी पडती थी, उनका वर्णन जातक मे किया गया है।[२] निहाई (अधिकरणिय) और भट्टी (उखा) का भी उल्लेख किया गया है। हाथीदाँत का काम करने वाले (दन्त-कारा) बुद्ध-काल में कुशल कारीगर माने जाते थे। मज्झिम-निकाय के महासकुलु-दायि-सुत्तन्त मे बताया गया है कि किस प्रकार एक चतुर दन्तकार सिझाये दाँत से जिस किसी वस्तु को चाहता है, बना सकता है। दन्तकार लोग एक प्रकार की आरी (खरकच) से अपना काम करते थे और भारत की बनी हुई हाथीदाँत की वस्तुएँ बाहर निर्यात की जाती थी।

अनेक प्रकार के घडे और बर्तन, जो उपयोगी होने के साथ-साथ कलापूर्ण भी होते थे, बुद्धकालीन कुम्भकार बनाते थे। चाक (चक्क) पर आजकल के समान ही

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४९।
२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ६६।

प्रायः बर्तन बनाये जाते थे। अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी चित्रकारी भी बर्तनों पर की जाती थी। मज्झिम-निकाय के महासुकुलुदायि-सुत्तन्त में बताया गया है कि किस प्रकार एक चतुर कुम्भकार सिझाई मिट्टी से जो भाजन चाहता है, बना लेता है।

लकड़ी का काम करने वाले लोग अक्सर वड्ढकी या बढ़ई कहलाते थे। उनका काम अधिकतर भवन-निर्माण-कला से सम्बन्धित था। बड़े निर्माण-कार्यों को करने वाले बढ़ई (महावड्ढकी) कहलाते थे। भवन-निर्माण से ही सम्बन्धित पत्थर को काटकर काम करने वाले 'पासाणकोत्तका' और ईंटों का काम करने वाले 'इट्ठकवड्ढकी' लोग होते थे। राज लोग गृहपति-शिल्पकार (गहपति सिप्पकार) कहलाते थे। ईंट (इट्ठक) और मिट्टी (मत्तिका) से प्रायः घर बनाये जाते थे। चूने (उदुक्खल, उल्लोक) का भी प्रयोग किया जाता था। बढ़ई लोग लकड़ी के खिलौने भी बनाते थे। कृषकों के लिए यन्त्र (यन्तानि) और वस्त्र-उद्योग से सम्बद्ध औजार बनाना भी वड्ढकि लोगों का ही काम था। लकड़ी काट कर विभिन्न वस्तुएँ बनाने का काम करने वाले तच्छक (तच्छका) भी एक प्रकार के बढ़ई होते थे। इसी प्रकार कुशलतापूर्वक खराद करने वालों के भी उल्लेख हैं और रथ के अंग-प्रत्यंग बनाने वालों के भी।

उपर्युक्त शिल्पों के अतिरिक्त अन्य अनेक शिल्प बुद्ध-काल में विद्यमान थे। अनेक प्रकार के चिकित्सक (तिकिच्छका) और वैद्य (वेज्ज) उस समय थे, जो जड़ी-बूटियों से औषधोपचार करते थे। चीर-फाड़ करने वाले (सल्लकत्ता) वैद्य भी उस समय थे। बाल-रोगों के विशेषज्ञ वैद्य 'दारक तिकिच्छका' कहलाते थे। माला बनाने वाले 'मालाकारा' और फूल, काशिक चन्दन, अगरु आदि सुगन्धित वस्तुएँ बेचने वाले 'गन्धिका' लोग काफी संख्या में थे। खश भी खोदी जाती थी और इस सम्बन्धी उद्योग भी सम्भवतः चलता था।[1] इनके अलावा नृत्य-गीत और वाद्य में कुशल 'नच्च-गीत-वादित-कुसला' कलाकार होते थे, जो नाटकीय अभिनय और 'समज्जा' जैसे खेलों से जनता का मनोरंजन करते थे। रस्सी पर नाच दिखाने

---

१. स्थविर मालुंक्यपुत्त ने कहा है, "जैसे खश के लिए लोग उशीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ को खोदो।" थेरगाथा, पृष्ठ १२० (हिन्दी अनुवाद)।

वाले 'लंघन नटका' और बाँस पर चढ़कर खेल दिखाने वाले नट भी उस समय थे। एक ऐसे नट और उसके शिष्य मेदकथालिका के खेल और मनोरंजक परिसंवाद का आँखों देखा हाल स्वयं भगवान् बुद्ध ने अपने मुख से एक उपदेश को समझाने के लिए वर्णन किया है,[१] जो उस चित्र को आज भी हमारे लिए सजीव बनाता है। बुद्ध-काल में नाना शिल्पों की शिक्षा उसी प्रकार महत्वपूर्ण मानी जाती थी, जिस प्रकार तीन वेदों की (तयो वेदा सिप्पानि च) और उनके आचार्यों का प्रायः समान ही आदर होता था।

भिन्न-भिन्न शिल्पों को करने वाले लोगों के संघ बुद्ध-काल में बने हुए थे, जो 'सेणियो' (श्रेणयः) या 'पूगा' कहलाते थे। जातक के वर्णनानुसार १८ प्रकार के शिल्पकारों के संघ (अट्ठारस सेणियो) बुद्ध-काल में विद्यमान थे।[२] इनमें से केवल चार का स्पष्टतः उल्लेख पाया जाता है, जैसे कि (१) वड्ढकि-सेणि, (२) कम्मार-सेणि (३) चम्मकार-सेणि और (४) चित्तकार-सेणि।[३] इस प्रकार बढ़ई, धातुकार, चर्मकार और चित्रकार, इन चार प्रकार के कारीगरों के संघ या श्रेणियाँ बुद्ध-काल में निश्चित रूप से विद्यमान थीं। शेष १४ 'सेणियो' के सम्बन्ध में हम केवल अनुमान लगा सकते हैं, निश्चयतः नही कह सकते कि इन्ही शिल्पकारों के केवल संघ थे। चूँकि बुद्ध-काल में प्रचलित शिल्पों की संख्या १८ से बहुत अधिक थी, इसलिए यह भी सम्भव है कि शिल्पकारों के संघों की संख्या भी १८ से ऊपर रही हो। रायस डेविड्स् ने बुद्धकालीन शिल्पों का १८ भागों में वर्गीकरण किया है और कहा है कि इनमे से प्रायः प्रत्येक के संघ या 'सेणियो' थे[४], जिसे अनुमानाश्रित ही कहा जा सकता है। जैसा हम पहले कह चुके है, केवल चार शिल्पों के सम्बन्ध में हमें यह निश्चित सूचना मिलती है कि उनके संघ थे। शेष १४ श्रेणियाँ किन शिल्पों से सम्बन्धित

---

१. संयुत्त-निकाय के सेदक-सुत्त में। देखिये संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६९५-६९६।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २२, ४२७।

३. उपर्युक्त के समान।

४. बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ठ ५७-६० (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

थीं, इसके बारे में आज केवल अनुमान लगाया जा सकता है। व्यावसायिक संगठन-विशेष के रूप में 'पूग' शब्द का प्रयोग विनय-पिटक के पाचित्तिय-काण्ड (पाचित्तिय पालि, श्री नालन्दा संस्करण, पृष्ठ ३४४) में 'पूगपरिक्खारनिक्खिपनवत्थु' में है। अंगुत्तर-निकाय के तिक-निपात के एक सुत्त में भी पूग में जाकर किसी व्यक्ति के द्वारा झूठी गवाही देने की बात कही गई है, जिससे विदित होता है कि झगड़ा होने पर गवाहियाँ पूगों में ली जाती होंगीं।

बुद्ध-काल में अधिकतर शिल्प पितृक्रमागत ढंग से चलते थे। एक कुम्भकार या चम्मकार का पुत्र प्रायः उसी काम को करता था जो उसके परिवार में होता चला आता था। यही कारण है कि 'कुम्भकार-कुलं', 'सत्थवाह-कुलं', 'पण्णिक-कुलं' जैसे प्रयोग, जिनमें विशिष्ट शिल्पों का सम्बन्ध विशिष्ट परिवारों के साथ कर दिया गया है, हमें जातकों में देखने को मिलते हैं। विभिन्न शिल्पों का स्थानीयकरण भी बुद्ध-काल में प्रायः देखा जाता है। एक विशेष शिल्प को करने वाले लोग विशिष्ट ग्रामों और नगरों की वीथियों में रहते थे, जिनके नाम उनके नाम पर ही अक्सर पड़ जाते थे। कुम्भकार जातक में हम देखते हैं कि वाराणसी के समीप 'कुम्भकार गाम' नामक एक गाँव कुम्भकारों का ही बसा हुआ था। इसी प्रकार अलीन-चित्त-जातक के अनुसार 'वड्ढकिगाम' नामक एक बढ़इयों का गाँव भी वाराणसी के समीप बसा हुआ था। समुद्दवाणिज जातक में भी इस गाँव का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार एक 'नेसादगाम' (निषाद-ग्राम) भी था।[1] सूचि जातक के अनुसार दो 'कम्मारगाम' भी थे, जो एक दूसरे के पास बसे हुए थे। इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के सुभ-सुत्तन्त में एक 'नलकारगाम' का उल्लेख है, जो श्रावस्ती के समीप स्थित था। इस गाँव में, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, अधिकतर निवासी बाँस की टोकरी आदि बनाने का काम करते थे। विभिन्न नगरों की वीथियों के नाम अक्सर उनमें बसने वाले शिल्पकारों के नाम पर पड़ जाते थे। इस प्रकार जातकों में हम दन्तकार-वीथि[2], (हाथीदाँत का काम करने वाले कारीगरों की गली), रजक-वीथि और तन्तविततट्ठानं[3] (जुलाहों का स्थान) जैसे स्थानों के प्रयोग देखते हैं।

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६; जिल्द छठी, पृष्ठ ७१।
२. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९७।
३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।

एक विशेष प्रकार के शिल्पकारों का प्रधान 'जेट्ठक' या 'पमुख' ('पामुख' भी) (प्रमुख) कहलाता था। समुद्दवाणिज जातक के वर्णनानुसार वाराणसी से थोड़ी दूर एक वड्ढकिगाम में बढ़इयों के १००० परिवार रहते थे, जिनमें से प्रत्येक ५००-५०० बढ़इयों के ऊपर एक-एक जेट्ठक के हिसाब से दो बढ़ई जेट्ठक थे। "कुलसहस्से पञ्चन्नं पञ्चन्नं कुलसतानं जेट्ठका द्वे वड्ढकि अहेसुं।" विशिष्ट शिल्प के साथ जेट्ठक का नाम जोड़ कर अक्सर प्रयोग किया जाता था, जैसे कम्मारजेट्ठक, मालाकारजेट्ठक, वड्ढकिजेट्ठक आदि। व्यापारिक समुदायों के जेट्ठक 'सत्थवाह जेट्ठक' कहलाते थे। इन जेट्ठकों के, जो प्रायः निर्वाचित होते थे, काफी अधिकार थे और राज-दरबार में उन्हे प्रायः एक पदाधिकारी माना जाता था। उरग जातक में व्यावसायिक संघों के दो प्रमुखों को हम राजा के मन्त्रियों के रूप में देखते हैं। कारीगरो में कोई झगड़ा होने पर उसका निर्णय जेट्ठक लोग ही करते थे और सामान्यतः एक विशिष्ट शिल्प से सम्बन्धित सब बातों पर उसके जेट्ठक का अधिकार होता था। रायस डेविड्स[1] और रिचार्ड फिक[2] ने बुद्धकालीन शिल्पकार-संघों या 'पूगों' या 'सेणियों' की तुलना मध्ययुगीन यूरोप के गिल्डों (guilds) से की है।

व्यापार या वाणिज्य (वणिज्जा) की एक उच्च विकसित अवस्था हमें बुद्ध-काल में देखने को मिलती है। उस समय देश का प्रायः सारा व्यापार गहपति (गृहपति-वैश्य) लोगों के हाथ में था, जिनकी प्रभूत सम्पत्ति का हम पहले वर्णन कर चुके है। राजगृह, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, चम्पा, वैशाली, तक्षशिला, भद्रवती, मिथिला और आपण जैसे नगरों में अनेक धनी सेठ उस समय थे, जिनका सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। जनपदो में भी इसी प्रकार सेठ होते थे, जिन्हें 'जनपद सेट्ठि' कहा जाता था। ये व्यापार का काम करते थे और लेन-देन का काम भी। सामाजिक जीवन के अधिक जटिल न होने के कारण अभी उस शोषण के दुष्परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे जो एक पूंजीवादी समाज से सम्बन्धित है। यह इस

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ६० (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. दि सोशल आर्गेनिजेशन इन नौर्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, पृष्ठ २८४।

बात से प्रकट होता है कि इस समय किसी जनपद की समृद्धि के लिए उसके अन्दर सेठ या सेठों का होना आवश्यक माना जाता था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है कि राजा प्रसेनजित् के राज्य में कोई बड़ा सेठ नहीं था। इसलिए उसकी प्रार्थना पर मगध-राज बिम्बिसार ने अपने राज्य के प्रसिद्ध सेठ धनंजय को कोसल में बसने भेज दिया था, जिसने साकेत में आकर अपना व्यवसाय आरम्भ किया।[1] समाज में सेठों का कितना आदर था और उनकी कितनी बड़ी शक्ति थी, यह इसी से जाना जा सकता है कि राजाओं से उनके प्राय: मित्रता के सम्बन्ध रहते थे और एक दूसरे के यहाँ निमन्त्रण आदि में आना-जाना होता था। श्रावस्ती के मृगार श्रेष्ठी के पुत्र की बारात में, जो साकेत के धनंजय सेठ के यहाँ गई थी, राजा प्रसेनजित् बराती बन कर गया था और कई महीने तक वहाँ ठहरा था। राजगृह का सेठ जब भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षु-संघ के लिए भोजन तैयार करवा रहा था तो अनाथपिण्डिक ने उससे पूछा था, "क्या आपके यहाँ महाराज बिम्बिसार भोजन के लिए आने वाले हैं?"[2] धम्मपद-ट्ठकथा के अनुसार राजा बिम्बिसार का भी इतना सुन्दर महल नहीं था जितना उसी के राज्य के राजगृह-निवासी श्रेष्ठी जोतिक का। राजा बिम्बिसार लकड़ी के बने महल में रहता था, जबकि जोतिक का भवन पत्थर का बना हुआ था। इस पर ईर्ष्या करते हुए कुमार अजातशत्रु को यह कहते दिखाया गया है, "अहो! कितना अन्धा और मूर्ख है मेरा पिता! गृहपति तो रहते हैं सप्तरत्नमय प्रासाद में और यह राजा होकर लकड़ी के बने घर में रहता है।" "अहो अन्धबालो मम पिता! गहपतिका नाम सत्तरतनमये पासादे वसति। एसो राजा हुत्वा दारुमये गेहे वसति।" आज की तरह उस समय भी सेठ शब्द का प्रयोग किसी भी धनवान् वैश्य व्यापारी के लिये होता था, परन्तु जैसा हम आगे देखेंगे, बुद्ध-काल में वह विशेषत: एक पद का भी सूचक था, जो पितृक्रमागत होता था।

बुद्धकालीन भारत के अन्तर्देशीय व्यापार का विचार करने पर सर्वप्रथम चित्र जो हमारे सामने आता है वह है, माल (भण्डं) से भरी हुई ५०० गाड़ियों (पञ्चम-

---

१. देखिये तृतीय परिच्छेद में साकेत नगर का वर्णन।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५९।

तानि सकटसतानि) के काफिलों (शकट-सार्थ) को लिये हुए देश के एक कोने से दूसरे कोने को जाने वाले व्यापारियों का। इस प्रकार हम सूनापरान्त जनपद (ठाणा और सूरत के जिलों का अंश) के दो व्यापारी भाइयों को क्रमशः ५००-५०० गाड़ियाँ लेकर श्रावस्ती व्यापारार्थ जाते देखते हैं।[१] ५०० गाड़ियों को ही साथ लेकर जाता हुआ पुक्कुस मल्लपुत्र व्यापारी भगवान् को पावा और कुसिनारा के बीच रास्ते पर मिला था। भगवान् पावा से कुसिनारा की ओर जा रहे थे और वह कुसिनारा से पावा की ओर आ रहा था।[२] जातकट्ठकथा की निदान-कथा में हम देखते है कि श्रावस्ती का प्रसिद्ध व्यापारी अनाथपिण्डिक राजगृह अपने किसी व्यापारिक कार्य से ५०० गाड़ियों को साथ लेकर गया था और इसी समय प्रथम बार उसने भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे।[३] विनय-पिटक में हम बेलट्ठ कच्चान नामक व्यापारी को गुड़ के घड़ों से भरी ५०० गाड़ियों के साथ राजगृह से अन्धकविन्द ग्राम की ओर जाने वाले रास्ते पर जाते देखते है[४]। तपस्सु और भल्लिक नामक व्यापारी, जिन्होंने भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम आहार दिया था, ५०० गाड़ियों के साथ उत्कल (उक्कल) जनपद से मध्य देश में व्यापारार्थ ही आ रहे थे।[५] लाल वस्त्रों से लदी ५०० गाड़ियों को साथ लिए वाराणसी के एक व्यापारी का श्रावस्ती जाने का उल्लेख है, जो बीच में नदी पार न कर सकने के कारण किनारे पर ही माल

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३७६, पद-संकेत ३।

२. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

३. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११९ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद); विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५८-४५९ में तथा संयुत्त-निकाय, पहला भाग, पृष्ठ १६८ (हिन्दी अनुवाद) में जहाँ अनाथपिण्डिक के द्वारा भगवान् बुद्ध के प्रथम दर्शन का वर्णन है, केवल राजगृह के सेठ के यहाँ उसका अपने किसी काम से आना दिखाया गया है, परन्तु ५०० गाड़ियों का उल्लेख नहीं है।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ २३६।

५. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०३ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

बेचने के लिए रुका रहा।[1] इसी प्रकार वाराणसी के एक अन्य व्यापारी का उल्लेख है, जो ५०० गाड़ियाँ लेकर माल खरीदने सीमान्त (प्रत्यन्त) देश में गया और वहाँ उसने चन्दन खरीदा।[2] दीघ-निकाय के पायासि राजञ्ञ सुत्त में ५००-५०० गाड़ियों को साथ लिये दो मालिक व्यापारियों का पूर्व देश से पश्चिम देश को (पुब्बन्ता अपरन्तं) जाने का उल्लेख है। ५०० गाड़ियों की बात छोड़ कर वैसे भी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को व्यापारार्थ जाने वाले व्यापारियों के अनेक विवरण हमे पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलते हैं। वाराणसी के एक व्यापारी का व्यापारार्थ तक्षशिला जाने का उल्लेख है।[3] इसी प्रकार विनय-पिटक से पता चलता है कि दक्षिणापथ के व्यापारी पूर्व देश में व्यापार के लिये जाते थे।[4] कूटवाणिज जातक, अपण्णक जातक तथा अन्य अनेक जातक-कथाओं में हमें पूर्वान्त से अपरान्त जाने वाले व्यापारियों के उल्लेख मिलते हैं। सेरिवाणिज जातक में सेरिव राष्ट्र के व्यापारियों को व्यापारार्थ तेलवाह नामक नदी को पार कर अन्धपुर नामक नगर में जाते दिखाया गया है। उत्तरापथ के घोड़ों के सौदागरों को ५०० घोड़ों के सहित वर्षा-काल में वेरंजा में पड़ाव डाले हम देखते हैं।[5] विमानवत्थु की अट्ठकथा में सेरिस्सक की कथा से तथा एक जातक-कथा[6] के विवरण से स्पष्ट मालूम होता है कि अंग-मगध के व्यापारी सिन्धु-सोवीर देश तक व्यापारार्थ जाते थे और उन्हें मार्ग में ६० योजन का मरु-कान्तार (सट्ठियोजनकं मरुकन्तारं) पार करना पड़ता था, जिससे तात्पर्य राजपूताना के रेगिस्तान से ही हो सकता है। वण्णुपथ जातक से भी इस तथ्य की सिद्धि होती है। गन्धार जातक में इस बात का साक्ष्य है कि विदेह के व्यापारी व्यापारार्थ गन्धार तक जाते थे। गंगा और यमुना को

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४२९।

२. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५२३।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १२३।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५४।

५. देखिये द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का भौगोलिक विवरण।

६. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ९९, १०८।

पार कर मरुस्थल में होते हुए वे गन्धार की राजधानी तक्षशिला में पहुँचते थे। इसी प्रकार वाराणसी और उज्जेनी (उज्जयिनी),[1] विदेह और कश्मीर-गन्धार[2], वाराणसी और श्रावस्ती,[3] वाराणसी और चेति देश,[4] राजगृह और श्रावस्ती,[5] तथा अन्य बीसों नगरों के बीच व्यापारिक सम्बन्धों को हम बुद्ध-काल में देखते हैं।

विनय-पिटक से स्पष्ट विदित होता है कि राजा की ओर से आवागमन के मुख्य नाकों पर, यथा नदी के घाटो पर और गाँवों और नगरों के प्रवेश-द्वार पर चुंगी (सुक) वसूल करने की चौकियाँ (सुकट्ठान) बनी हुई थी जहाँ यात्रियों और व्यापारियों को चुगी चुकानी पड़ती थी। विनय-पिटक की पाचित्तिय पालि (पृष्ठ १७६, श्री नालन्दा संस्करण) मे उल्लेख है कि एक भिक्षु कुछ यात्रियो के साथ पकड़ा गया था जो चोरी से कुछ चीजें ले जा रहे थे। अंगुत्तर-निकाय के दुक-निपात के एक सुत्त मे भी अपराधी भिक्षु की उपमा उस व्यक्ति से दी गई है जो बिना चुगी चुकाये माल ले जाने का अपराधी होता है।

ऊपर हम बुद्ध-काल के अन्तर्देशीय व्यापार का और उस समय व्यापारी जिन मार्गों का अनुगमन करते थे, उनका कुछ उल्लेख कर चुके है। द्वितीय परिच्छेद में हमने भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण दिया है, जिससे बुद्ध-काल में विद्यमान मार्गों के सम्बन्ध में हमें काफी सूचना मिलती है। इसी प्रकार तृतीय परिच्छेद में हमने जम्बुद्वीप के अनेक नगरों का वर्णन किया है, जो विभिन्न मार्गों के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए थे। इन सब बातों की पुनरुक्ति करना यहाँ ठीक न होगा। इसलिए सब बुद्धकालीन मार्गों का दुबारा उल्लेख न कर हम यहाँ केवल कुछ महामार्गों का ही निर्देश करेंगे।

सब से प्रधान मार्ग बुद्ध-काल में वह था जो पूर्व से पश्चिम तक (पुब्बन्ता अपरन्तं) जाता था। मगध की राजधानी राजगृह से चल कर यह मार्ग उत्तर-

---

१ जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४८।

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६५।

३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २९४।

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २५३-२५४।

५. सुत्त-निपात (पारायण-वग्गो)।

पश्चिम में गन्धार राष्ट्र की राजधानी तक्षशिला तक पहुँचता था। श्रावस्ती से साकेत होते हुए एक मार्ग संकाश्य नगर पर इस मार्ग को कोसल देश की राजधानी श्रावस्ती से भी जोड़ता था। यही मार्ग उत्तरापथ कहलाता था और इसे हम प्राचीन ग्रांड ट्रंक रोड कह सकते हैं। राजगृह से चलकर यह मार्ग पहले नालन्दा आता था, फिर पाटलिपुत्र, वाराणसी, पयाग पतिट्ठान (प्रयाग प्रतिष्ठान), कण्णकुज्ज (कन्नौज), संकाश्य, सोरों (सोरेय्य) और वेरंजा होता हुआ मथुरा पहुँचता था। मथुरा से आगे चल कर इन्द्रप्रस्थ (इन्दपत्त) और सम्भवतः सागलं (स्यालकोट) होते हुए गन्धार राष्ट्र के तक्षशिला नगर तक पहुँचता था। बीच में पाटलिपुत्र, वाराणसी और प्रयाग प्रतिष्ठान पर गंगा पार करने के अतिरिक्त अन्य कई नदियाँ भी मार्ग में पार करनी पड़ती थीं, जहाँ घाटों पर नावें तैयार मिलती थीं। राजगृह का जीवक वैद्य सम्भवतः इसी मार्ग के द्वारा राजगृह से तक्षशिला में विद्या प्राप्त करने गया था, यद्यपि उसकी यात्रा का कोई विवरण पालि तिपिटक में नहीं दिया गया है। इस परम्परा से केवल इतना मालूम पड़ता है कि लौटते हुए जीवक साकेत होते हुए राजगृह आया था।[१] परन्तु मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में हमें तक्षशिला से लेकर राजगृह तक की जीवक की वापसी यात्रा का पूरा विवरण मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार जीवक तक्षशिला से चलकर पहले भद्रङ्कर नगर में आया,[२] फिर वहाँ से उदुम्बरिका पहुँचा।[३] उदुम्बरिका से जीवक रोहीतक (वर्तमान रोहतक) आया।[४] वहाँ से चल कर वह मथुरा आया[५] और फिर यमुना के तट पर गया।[६] यहाँ से चलने के बाद वह वैशाली पहुँचा[७] और फिर क्रमशः

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।

२. ततो जीवकोऽनुपूर्वेण भद्रंकरं नगरमनुप्राप्तः। गिलगिल मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३२।

३. सोऽनुपूर्वेण उदुम्बरिकामनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३३।

४. ततो जीवको रोहीतकमनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३३।

५. ततो जीवकोऽनुपूर्वेण मथुरामनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३५।

६. ततो जीवकोऽनुपूर्वेण यमुनातटमनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३६।

७. सोऽनुपूर्वेण वैशालीं गतः। वहीं, पृष्ठ ३७।

यात्रा करता हुआ राजगृह पहुँचा।[1] इस प्रकार तक्षशिला से प्रारम्भ कर जीवक के मुख्य पड़ाव थे भद्रङ्कर, उदुम्बरिका, रोहीतक, (दिव्यवदान में 'रोहितक' पाठ है) मथुरा, वैशाली और राजगृह। यद्यपि यह विवरण भी पूरा नहीं है, परन्तु फिर भी इससे हम राजगृह से तक्षशिला जाने वाले मार्ग के बीच के महत्वपूर्ण नगरों का परिचय अवश्य प्राप्त कर लेते हैं। हम पहले अपण्णक जातक तथा दीघ-निकाय के पायासि-राजञ्ञ-सुत्त के आधार पर देख चुके हैं कि पूर्व देश के व्यापारी पश्चिम देश में व्यापारार्थ जाते थे। अन्य कई पालि स्रोतों में भी इसी प्रकार के उल्लेख हैं। ये सब व्यापारी उपर्युक्त 'उत्तरापथ' मार्ग से ही आते-जाते होंगे। विमानवत्थु की अट्ठकथा में सेरिस्सक की कथा तथा पहले उद्धृत जातक के विवरण से हम अंग-मगध के जिन व्यापारियों को ६० योजन मरुकन्तार पार करके सिन्धु-सोवीर और गन्धार जनपद में पहुँचते देखते हैं, वे भी इसी मार्ग से राजपूताना के रेगिस्तान को पार करके सम्भवतः गये होंगे। उत्तरापथ के जिन ५०० घोड़ों के व्यापारियों को हम वेरंजा में पड़ाव डाले देखते हैं, वे भी उत्तरापथ मार्ग के द्वारा ही वेरंजा तक आये होंगे। कहने की आवश्यकता नही कि राजगृह के व्यापारी रोरुक (रोरुव) तक इसी मार्ग के द्वारा पहुँचते थे और वाराणसी और मथुरा आदि इस मार्ग पर पड़ने वाले नगरों का गन्धार और सिन्धु-सोवीर देशों के साथ जो व्यापार चलता था, वह भी इसी मार्ग से होता था। भगवान् ने वेरंजा से सोरेय्य, संकस्स, कण्णकुज्ज और पयाग पतिट्ठान होते हुए वाराणसी तक की जो यात्रा की थी[2], वह इसी महामार्ग के बीच का एक अंग थी। राजगृह से तक्षशिला तक जाने वाला यह महामार्ग वस्तुतः यहीं तक सीमित न था। पूर्व में हम जानते हैं कि राजगृह चम्पा से स्थलीय मार्ग के द्वारा सम्बन्धित था और चम्पा से जलीय मार्ग द्वारा ताम्रलिप्ति तक आवागमन था। ताम्रलिप्ति से समुद्री मार्ग द्वारा व्यापारी सुवर्णद्वीप (दक्षिणी बरमा) तक तो जाते ही थे, मिलिन्दपञ्हो (ईसवी सन् के करीब) में चीन के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख है[3] और बाद में चलकर भारत से चीन जाने वाले और

---

१. सोऽनुपूर्वेण राजगृहं गतः। वहीं, पृष्ठ ३८।

२. देखिये द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण।

३. "सम्पन्नो नाविको...वङ्गं तक्कोलं चीनं सोवीरं सुरट्ठं अलसन्दं

चीन से भारत आने वाले यात्रियों के जहाज बदलने के स्थान के रूप में तो ताम्रलिप्ति बन्दरगाह प्रसिद्ध ही था, ऐसा चीनी यात्रियों के विवरणों से स्पष्ट विदित होता है। उत्तर में यह महामार्ग तक्षशिला से आगे चलकर पश्चिमी तथा मध्य एशिया तक जाता था। इस प्रकार राजगृह से तक्षशिला जाने वाला यह मार्ग पूर्व और उत्तर-पश्चिम दोनों ओर शेष संसार से भारत का सम्बन्ध जोड़ता था। भारत के प्रायः सब महानगर इस मार्ग से दूसरे मार्गों के द्वारा जुड़े हुए थे, यह नीचे के विवरण से स्पष्ट होगा।

राजगृह से श्रावस्ती जाने वाला बुद्ध-काल का एक दूसरा प्रसिद्ध मार्ग था। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य प्रतिष्ठान से श्रावस्ती पहुँचने के बाद फिर श्रावस्ती से राजगृह तक इसी मार्ग के द्वारा गये थे। इस मार्ग में पड़ने वाले स्थान श्रावस्ती से आरम्भ कर इस प्रकार थे, श्रावस्ती, सेतव्या कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर, जम्बुगाम, अम्बगाम, हत्थिगाम, भण्डगाम, वैशाली, नादिका, कोटिगाम, पाटलिपुत्र, नालन्दा और राजगृह। इन स्थानों में से कुछ पर बावरि ब्राह्मण के शिष्य नहीं रुके थे। भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में जब राजगृह से कुसिनारा गये, तो इसी मार्ग पर होकर गये थे। राजगृह और नालन्दा के बीच भगवान् अम्बलट्ठिका में भी ठहरे थे। हम पहले देख चुके है कि राजगृह से तक्षशिला तक जाने वाला महामार्ग भी नालन्दा और पाटलिपुत्र में होकर गुजरता था, अतः ये दोनों स्थान उसके साथ-साथ इस दूसरे मार्ग पर स्थित वैशाली, कपिलवस्तु और श्रावस्ती जैसे नगरो के साथ भी जुड़े हुए थे। नालन्दा से एक सड़क गया को भी जाती थी, जो उसे उस मार्ग से जोड़ती थी, जो ताम्रलिप्ति से गया होता हुआ वाराणसी तक जाता था। वैशाली से पाटलिपुत्र होते हुए भी यात्री वाराणसी जाते थे।

बुद्ध-काल का तीसरा प्रसिद्ध मार्ग दक्षिणापथ था, जो उत्तर भारत को दक्षिण भारत से जोड़ता था। यह मार्ग उत्तर में श्रावस्ती से चल कर दक्षिण में प्रतिष्ठान (पैठन) तक जाता था। बावरि ब्राह्मण के १६ शिष्य इसी मार्ग के द्वारा

कोलपट्टनं सुवण्णभूमिं गच्छति।" मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

प्रतिष्ठान से श्रावस्ती गये थे। बीच में पड़ने वाले स्थान प्रतिष्ठान से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, प्रतिष्ठान, माहिष्मती, उज्जेनी, गोनद्ध, विदिशा (वेदिसं), वनसाह्वय या वनसव्हय, कौशाम्बी, साकेत और श्रावस्ती[1]। इस मार्ग पर पड़ने वाली कौशाम्बी नगरी व्यापारिक मार्ग द्वारा एक ओर वाराणसी से जुड़ी हुई थी और दूसरी ओर राजगृह से। माहिष्मती से एक मार्ग भरुकच्छ को भी जाता था। इसी मार्ग के द्वारा उज्जेनी (उज्जयिनी) पश्चिमी समुद्र तट के भरुकच्छ और सुप्पारक जैसे बन्दरगाहों से जुड़ी हुई थी।

उपर्युक्त तीन महामार्गों के अलावा अन्य कई मार्ग भी बुद्ध-काल में विद्यमान थे। एक मार्ग अहोगंग पर्वत (हरिद्वार) से सोरों (सोरेय्य), तक आता था और सोरों से क्रमशः संकाश्य, कन्नौज, उदुम्बर और अग्गलपुर होता हुआ सहजाति या सहजातिय तक जाता था। हम पहले देख चुके हैं कि सोरों, संकाश्य और कन्नौज उस मार्ग पर भी पड़ते थे जो मथुरा से वेरंजा होता हुआ इन तीनों स्थानों को क्रमशः पार कर प्रयाग प्रतिष्ठान और उसके बाद वाराणसी तक पहुँचता था, जहाँ से पाटलिपुत्र, चम्पा और ताम्रलिप्ति तक के लिए नावें मिलती थी। विदेह के व्यापारी मिथिला से स्थल-मार्ग के द्वारा पहले चम्पा पहुँचते थे, जहाँ से वहाँ की दूरी ६० योजन बताई गई है, और फिर चम्पा से नदी के द्वारा ताम्रलिप्ति तक जाते थे जहाँ से वे सुवर्णभूमि की समुद्री यात्रा करते थे। हमने देखा है कि श्रावस्ती से चलकर कुमार प्रसेनजित्, बन्धुल मल्ल और महालि लिच्छवि विद्या प्राप्त करने तक्षशिला गये थे। उनके मार्ग का उल्लेख नहीं किया गया है। श्रावस्ती से वैशाली हो कर वाराणसी तक आना और फिर वहाँ से प्रयाग प्रतिष्ठान, कान्यकुब्ज, संकाश्य, सोरेय्य, वेरंजा और मथुरा होते हुए जाना अवश्य ही लम्बा मार्ग पड़ता होगा। अतः श्रावस्ती से कोई सीधा मार्ग भी तक्षशिला के लिये था, जिसकी दूरी कुल १९२ योजन बताई गई है। सम्भवतः यह मार्ग तक्षशिला से सागल (स्यालकोट) होता हुआ सोरेय्य से होकर जाता होगा। हम पहले सोरेय्य के विवरण में देख चुके हैं कि यहाँ होकर श्रावस्ती से तक्षशिला को निरन्तर शकट-सार्थ चलते रहते

---

१. उद्धरण के लिए देखिये पहले परिच्छेद में सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व का विवेचन।

थे। इसी प्रकार वेरंजा के विवरण में हम देख चुके हैं कि वहाँ के नलेरुपुचिमन्द नामक चैत्य के पास से होकर उत्तरकुरु की ओर मार्ग जाता था। उसी से उत्तरापथ के घोड़ों के व्यापारी, जो वहाँ पड़ाव डाले हुए थे, आये होंगे। अतः तक्षशिला और श्रावस्ती को जोड़ने वाला यह मार्ग अलीगढ़ जिले के वर्तमान कस्बे सिकन्दराराव के आसपास से होकर गुजरता होगा (जहाँ होकर ग्रांड ट्रंक रोड आज भी जाती है), यह प्रायः निश्चित जान पड़ता है। श्रावस्ती से साकेत होते हुए एक मार्ग संकाश्य नगर तक भी आता था। भगवान् संकाश्य में अवतरण के बाद इसी मार्ग के द्वारा श्रावस्ती गये थे। इस प्रकार श्रावस्ती से संकाश्य आने के बाद वहाँ से मथुरा होते हुए भी बुद्ध-काल में गन्धार राष्ट्र तक जाया जा सकता था। हम पहले देख चुके हैं कि सिन्धु-सोवीर देश और सूनापरान्त जनपद भी व्यापारिक मार्गों के द्वारा श्रावस्ती और राजगृह से जुड़े हुए थे। अन्य मार्गों के सम्बन्ध में हम द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण के प्रसंग में तथा तृतीय परिच्छेद में बुद्धकालीन नगरों का परिचय देते समय कह चुके है।

नदियों के द्वारा माल भी बुद्ध-काल में लाया ले जाया जाता था और उनसे यात्रा का काम भी लिया जाता था। गंगा नदी के मुहाने से लेकर चम्पा, पाटलिपुत्र, वाराणसी और सहजाति तक माल का परिवहन होता था। यमुना में कौशाम्बी तक नावों के द्वारा माल लाया ले जाया जाता था और यात्री भी आते-जाते थे। हम पहले देख चुके हैं कि वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु नावों में बैठ कर वाराणसी होते हुए गंगा के मार्ग के द्वारा सहजाति आये थे। पाटलिपुत्र से ताम्रलिप्ति (तामलित्ति) तक गंगा के मार्ग के द्वारा भिक्षुणी संघमित्रा गई थी।[1] इसी प्रकार देवान पिय तिस्स के राजदूत तामलित्ति तक लंका से समुद्री मार्ग द्वारा आकर तामलित्ति से पाटलिपुत्र तक गंगा के मार्ग द्वारा ही गये थे और इसी मार्ग से होकर लौटे थे। समुद्द-वाणिज जातक और अलीनचित्त जातक में हमने देखा है कि वाराणसी के समीप के वड्ढकिगाम के सब बढ़ई अपने परिवारों को लेकर एक बड़ी नाव में बैठ कर

---

१. पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान भी गंगा के मार्ग से पाटलिपुत्र से चम्पा नगर तक आया था और फिर वहाँ से ताम्रलिप्ति (तमलक) गया था। देखिये गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६५।

गंगा के मार्ग द्वारा भाग गये थे और समुद्र के समीप एक उर्वर द्वीप में जाकर बस गये थे। इसी प्रकार महाजनक जातक और संख जातक के क्रमशः चम्पा (काल चम्पा नगर) और वाराणसी (मोलिनी) के व्यापारियों का सुवर्णभूमि (दक्षिणी बरमा) जाने का उल्लेख है। ये व्यापारी गंगा नदी के द्वारा पहले ताम्रलिप्ति पहुँचते थे और फिर वहाँ से सुवण्णभूमि जाते थे। सीलानिसंस जातक से भी गंगा नदी के द्वारा समुद्र से लेकर वाराणसी तक का आवागमन सिद्ध है।

समुद्री यात्रा और उसके द्वारा विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों के अनेक विवरण हमें पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलते हैं। वाराणसी और चम्पा के व्यापारी, सम्भवतः ताम्रलिप्ति होते हुए, सुवण्णभूमि (दक्षिणी बरमा) तक व्यापारार्थ जाते थे, यह हम पहले देख चुके हैं। महाजनक जातक में चम्पा के व्यापारियों का सुवण्णभूमि जाना वर्णित है। इसी प्रकार संख जातक से हमें पता लगता है कि वाराणसी के व्यापारी भी व्यापारार्थ सुवण्णभूमि तक जाते थे। बुद्ध-काल में भारतीय व्यापारी धन के लिए समुद्री यात्रा करने के लिए कितने लालायित रहते थे, इसके वर्णन हमें सुधाभोजन-जातक और समुद्द-जातक में मिलते है। छह-छह मास की लम्बी समुद्री यात्रा भारतीय व्यापारी बुद्ध-काल में करते थे। वलाहस्स जातक मे हम वाराणसी के ५०० व्यापारियों को तम्बपण्णि (ताम्रपर्णि-लंका) के सिरिसवत्थु नामक नगर में पहुँचते देखते है। इसी जातक में तम्बपण्णि दीप की कल्याणी नदी का भी उल्लेख किया गया है।[१] इससे प्रकट होता है कि लंका के साथ समुद्री मार्ग द्वारा सम्बन्ध भारत के जातक-काल मे थे। बाद के ग्रीक लोगों के विवरणों से, जिनमें ताम्रपर्णि द्वीप को टेप्रोबेन कह कर पुकारा गया है, इसी तथ्य की सिद्धि होती है।[२] प्रसिद्ध बावेरु जातक से यह सिद्ध ही है कि भारतीय व्यापारी जहाजों के द्वारा फारस की खाड़ी में होकर बेबीलान तक व्यापारार्थ समुद्री यात्रा करते थे। सुप्पारक जातक में भरुकच्छ के व्यापारियों का ६००, यात्रियों से भरे एक विशाल जहाज को लेकर एक लम्बी यात्रा पर जाना वर्णित है,

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२७-१२८।

२. मेकक्रिंडल : इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, पृष्ठ १०२।

जिसमें उन्हें खुरमाल, अग्गिमाल आदि छह समुद्र पड़े थे, जिनकी आधुनिक स्थितियों के सम्बन्ध में हम द्वितीय परिच्छेद में विवेचन कर चुके हैं और यहाँ पुनरुक्ति करना ठीक न होगा। इन पहचानों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के व्यापारिक सम्बन्ध समुद्री मार्ग के द्वारा बेबीलान, अरब, मिश्र, यूनान और भूमध्यसागर के कतिपय देशों के साथ थे।[1] इधर दक्षिण में ताम्रपर्णि द्वीप के साथ तो भरुकच्छ और सुप्पारक के व्यापारियों का समुद्री मार्ग द्वारा घनिष्ठ सम्पर्क था ही, हम भरुकच्छ के व्यापारियों को, सुसन्धि जातक में, सुवर्णभूमि (दक्षिणी बरमा) तक जाते देखते हैं।[2] स्वाभाविक तौर पर वे पूरे पश्चिमी और पूर्वी समुद्री तट के सहारे चल कर, ताम्रपर्णि द्वीप में होते हुए सुवण्णभूमि तक पहुँचते होंगे। उदान की अट्ठकथा से विदित होता है कि बाहिय दारुचीरिय, जिनका जन्म बाहिय राष्ट्र में (एक अन्य सूचना के अनुसार भारुकच्छ में) हुआ था, सात बार सिन्धु नदी में होकर समुद्री यात्रा पर गये थे और आठवीं बार जब वे सुवण्णभूमि की ओर जा रहे थे तो उनका जहाज टूट गया और उन्होंने सुप्पारक में शरण ली। इस प्रकार सिन्धु नदी के समीपवर्ती बाहिय राष्ट्र तक से व्यापारी सुवर्णभूमि तक जाते थे।

महानिद्देस[3] में योन और परम योन देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्धों की बात तो कही ही गई है, पूर्व में काल-मुख (अराकान), सुवण्ण-भूमि (दक्षिणी बर्मा), वेसुंग, वेरापथ, तक्कोल, तमलि (ताम्रलिंग-मलाया में), तम्बपण्णि और जव (यव-जावा) देशों तक के साथ समुद्री मार्ग के द्वारा व्यापार की परम्परा का उल्लेख है। चीन के साथ भारत के समुद्री मार्ग के द्वारा व्यापारिक सम्बन्ध की बात मिलिन्दपञ्हो[4] में तो है ही, अपदान[5] में भी मलय प्रायद्वीप और चीन के देश के साथ भारत के समुद्री व्यापार का उल्लेख है। दिशाओं का ज्ञान करने के लिए नाविक

---

१. मिलाइये राधाकुमुद मुकर्जी : हिस्ट्री ऑव इण्डियन शिपिंग, पृष्ठ ८२।
२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १८८।
३. पृष्ठ १५४-१५५, ४१५।
४. पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।
५. जिल्द पहली, पृष्ठ २।

लोग कभी-कभी अपने साथ कौओं (दिसा काका) को ले जाते थे, ऐसा केवट्ट जातक से स्पष्ट मालूम पड़ता है। तारों को देखकर भी दिशाओं का ज्ञान किया जाता था, ऐसा वण्णुपथ जातक से विदित होता है।

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, भारत के पश्चिमी तट पर भरुकच्छ और सुप्पारक जैसे प्रसिद्ध बन्दरगाह थे और एक ओर अरब और बेबीलान तक भारतीय व्यापारी यात्रा करते थे तो दूसरी ओर तम्बपण्णि दीप तक और पूर्वी किनारे होते-होते ताम्रलिप्ति तक और फिर वहाँ से सुवण्णभूमि तक जाते थे। ताम्रलिप्ति के सम्बन्ध में हम पहले तृतीय परिच्छेद में काफी कह चुके हैं। कावीरपट्टन का भी उल्लेख तृतीय परिच्छेद में किया जा चुका है। अन्य बन्दरगाहों में करम्बिय,[1] गम्भीर[2] और सेरिव[3] जैसे स्थानों के नाम जातक-कथाओं के आधार पर आसानी से लिये जा सकते हैं। इनमें से कुछ का परिचय हम पहले दे चुके हैं।

बुद्ध-काल में स्थलीय और समुद्री दोनों प्रकार का व्यापार अत्यन्त विकसित और संघबद्ध अवस्था में था। स्थल-पथ के द्वारा व्यापार का कार्य करने वाले व्यापारी 'थलपथकम्मिका' और जलमार्ग के द्वारा व्यापार करने वाले 'जलपथकम्मिका' कहलाते थे। शिल्पकारों के समान व्यापारियों (वाणिजा) के भी संघ थे। उनका प्रधान 'जेट्ठक' या 'सेट्ठि' कहलाता था। सेठ धनी व्यापारी होने के अतिरिक्त एक पदाधिकारी भी होता था। वणिक्-संघों का वह एक प्रकार से प्रतिनिधि होता था जिसे एक उच्च पदाधिकारी के रूप में राजा के पास भी इस सम्बन्ध में जाना पड़ता था।[4] सेठ या सेट्ठि का पद प्रायः पितृक्रमागत होता था।[5] अनेक जातक-कथाओं में हमें सेठों के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं "सो सेट्ठिनो अच्चयेन तस्मिं नगरे सेट्ठिट्ठानं लभि" अर्थात्

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ७५।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २३९।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

४. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७५; जिल्द चौथी, पृष्ठ ६२।

५. देखिये जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २३१; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७५; जिल्द चौथी, पृष्ठ ६२।

"सेठ के मरने के बाद उसने उस नगर में सेठ का स्थान प्राप्त किया।" समाज में सेठ के पद का बड़ा सम्मान होता था और एक जातक-कथा में उसे 'राजपूजितो नगर-जनपद-पूजितो' कहा गया है।[१] सेट्ठि के नीचे उसका एक सहायक पदाधिकारी होता था, जिसे 'अनुसेट्ठि' कहा जाता था।[२] चूंकि मार्ग बुद्ध-काल में दुर्गम थे और हम पहले देख चुके हैं कि चेदि देश से वाराणसी जाने वाले और श्रावस्ती से साकेत तथा राजगृह जाने वाले जैसे मार्गों में चोरों और लुटेरों का भय रहता था। अनेक जातक-कथाओं में चोरों और लुटेरों के भय का वर्णन है।[३] सतपत्त जातक में ५०० लुटेरों के एक गिरोह का वर्णन है। इसी प्रकार का वर्णन सत्तिगुम्ब जातक में भी है। इन चोरों से बचने के लिए भिन्न-भिन्न शकट-सार्थों के नेता एक संयुक्त जेट्ठक की अधीनता में चलते थे और अपने साथ चौकीदारों का भी प्रबन्ध रखते थे। घने वनों में होकर निकलते हुए मार्ग के सम्बन्ध में उनकी सहायता वनवासी (अटवीमुखवासि) लोग करते थे, जिन्हें व्यापारियों को पारिश्रमिक स्वरूप कुछ देना भी पड़ता था।[४] जहाँ तक पड़ाव आदि डालने का सम्बन्ध था, उसके लिए एक अलग अधिकारी होता था, जो 'थल निय्यामक' कहलाता था। यही अधिकारी शकट-सार्थ की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होता था। समुद्री यात्रा के समान अक्सर तारों के मार्ग को देखकर वह शकट-सार्थ की दिशा के सम्बन्ध में निर्णय करता था।[५] जल-यात्रा के सम्बन्ध में इसी प्रकार का अधिकारी 'जल निय्यामक' कहलाता था।[६] कूटवाणिज जातक में हमें सूचना मिलती है कि दो वणिकों ने आपस में साझेदारी करके वाराणसी से ५०० गाड़ियों में माल खरीद कर भरा था और फिर वे उसे बेचने के लिए दूसरे जनपदों में गये थे। महावाणिज जातक, सेरिवाणिज जातक और गुत्तिल जातक

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८२।

२. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८४।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८५; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६४।

४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २२, ४७१।

५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १०७। (वण्णुपथ जातक)

६. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १३८।

में हमें व्यापारियों के स्थायी या अस्थायी संघों की सूचना मिलती है। कई जातकों में हम किसी व्यापारी के सम्बन्ध में अक्सर ऐसा पढ़ते हैं कि "वह किसी अन्य व्यापारी के साथ मिलकर वाणिज्य करता है।" "अञ्ञेन वाणिजेन सद्धिं एकतो हुत्वा वाणिज्जं करोति।" महावाणिज जातक में तो अत्यन्त साधारण रूप से कहा गया है "नाना राष्ट्रों से आये हुए व्यापारियों ने एक समिति बनाई और एक को प्रधान बनाकर धन कमाने के लिये चल पड़े[1]।"

भारतीय व्यापारी सामुद्रिक व्यापार के द्वारा भारत में विदेशों से किन वस्तुओं का आयात करते थे, इसका कोई निर्देश पालि विवरणों में नहीं मिलता। हम उन्हें विदेशों से सोना लाते ही देखते हैं। सुप्पारक जातक से पता लगता है कि समुद्रों से रत्न और मूंगे आदि भी भारतीय व्यापारी खोज कर लाते थे। जिन वस्तुओं का वे इस देश से निर्यात करते थे, उनमें बहुमूल्य वस्त्रों का एक मुख्य स्थान था। काशी के वस्त्र ये व्यापारी विदेशों में ले जाते थे और उनका प्रभूत मूल्य वसूल करते थे। इसी प्रकार गन्धार के कम्बलों, सिवि देश के दुशालों, दशार्ण जनपद की छुरियों और तलवारों तथा ऐसी ही अन्य वस्तुओं का भी ये व्यापारी निर्यात करते थे। मोर और अन्य चिड़ियों के विदेशों में ले जाये जाने के उदाहरण भी जातक में मिलते हैं।[2] साधारणतः रेशमी कपड़े, मलमल, हाथीदाँत की चीजें और सोने के आभूषण आदि भारत से विदेशों के लिए निर्यात किये जाते थे।

बुद्ध-काल में यद्यपि वस्तु-विनिमय के द्वारा अदला-बदली का रिवाज भी, विशेषतः ग्रामीण और वन्य समाज में, कुछ न कुछ चल रहा था, जैसा आज तक भी है, और इसके कुछ उदाहरण भी, जैसे किसी ने कपड़ा देकर कुत्ता ले लिया, आदि, जातक-कथाओं में मिल जाते हैं, परन्तु साधारणतः समाज में सिक्कों का प्रचलन था, जिनका प्रयोग क्रय-विक्रय के लिए किया जाता था। भारत में सिक्कों का प्रचार वस्तुतः ताम्र-युग से ही चला आ रहा था।[3] हिरण्य (अशर्फी) के द्वारा क्रय-विक्रय

---

१. "वाणिजा समितिं कत्वा नाना रट्ठतो आगता।
धनाहरा पक्कमिंसु एकं कत्वान गामणिं"॥

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १२६-१२७।

३. डॉ० डी० आर० भण्डारकर के मतानुसार भारत में सिक्कों का प्रचलन

बुद्धकालीन भारत में निश्चयतः प्रचलित था। तभी तो प्रेत-लोक के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता था, "न हि तत्थ कसी अत्थि गोरक्ख एत्त न विज्जति। बणिज्जा तादिसी नत्थि हिरण्णेन कयक्कयं"।[1] अर्थात् "वहाँ प्रेत-लोक में कृषि नहीं है और न गौ-रक्षा (पशु-पालन) वहाँ है। न वहाँ यहाँ का-सा वाणिज्य-व्यापार है और न है हिरण्य के द्वारा क्रय-विक्रय।" इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि हिरण्य के द्वारा क्रय-विक्रय बुद्धकालीन भारतीय व्यापार में प्रचलित था। सर्वाधिक प्रचलित सिक्का कहापण (सं० कार्षापण) कहलाता था। कहापण के मूल्य-निर्धारण का प्रयत्न कई विद्वानों ने किया है,[2] परन्तु तथ्य यह है कि हम आज उसके मूल्य के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। कहापण बुद्ध-काल का एक अति प्रचलित सिक्का था और जिस प्रकार आज हम साधारणतः धन के लिए 'पैसे' शब्द का प्रयोग कर देते हैं, उसी प्रकार बुद्ध-काल में लोग कहापण का प्रयोग करते थे। उदाहरणतः, जातकट्ठकथा की निदान-कथा में कहा गया है, "परलोकं

ईसा के पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी के आरम्भ से था। देखिये उनके "लैक्चर्स औन् एन्शियन्ट इण्डियन न्यूमिसमेटिक्स", (१९२१), पृष्ठ १०९।

१. पेतवत्थु, पृष्ठ ३ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

२. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार कहापण की क्रय-शक्ति आजकल के प्रायः बारह आने के बराबर थी। देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ २७८, पद-संकेत ३; रायस डेविड्स् ने कहा है कि कहापण में लगे ताँबे का मूल्य प्रायः $\frac{1}{4}$ पेनी के बराबर होता था, परन्तु उसकी क्रय-शक्ति आजकल के एक शिलिंग के बराबर थी। बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ६२ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)। ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने कहापण का मूल्य आधा क्राउन (२॥ शिलिंग) आँका है। देखिये उनकी "कंसाइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी", पृष्ठ ७६। महाथेर महोदय ने इसी कोश के पृष्ठ १९८ में मासक को एक सिक्का मानकर उसका मूल्य करीब एक आने के बराबर बताया है। इस प्रकार उनके मतानुसार एक कहापण करीब सवा रुपये के बराबर होगा, क्योंकि वह बीस मासक का होता था। यही मत हमें ठीक जान पड़ता है।

गच्छन्ता एकं कहापणं पि गहेत्वा न गता।" अर्थात् "परलोक जाने वाले अपने साथ एक भी कहापण नहीं ले गये।" पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में इतनी अधिक जगह कहापण का उल्लेख हुआ है कि उनका परिगणन करना कठिन है।

विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका) में भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अर्थात् राजा बिम्बिसार और अजातशत्रु के शासन-काल में प्रचलित मुद्रा-प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है, "तदा राजगहे वीसतिमासको कहापणो होति। तस्मा पंचमासको पादो। एतेन लक्खणेन सब्बजनपदेसु कहापणस्स चतुत्थो भागो पादो ति वेदितब्बो।[1]" इसका अर्थ यह है, "उस समय राजगृह में एक कहापण २० मासे (मासक) का होता था, जबकि एक पाद पाँच मासे (मासक) के बराबर होता था। इस लक्षण से यह समझ लेना चाहिए कि उस समय सब जनपदों में एक कहापण का चतुर्थ भाग पाद कहलाता था।" इस उद्धरण से प्रकट होता है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में जो मुद्रा-प्रणाली प्रचलित थी, उसके अनुसार पाँच मासे (मासक) का एक पाद और चार पाद का एक कहापण होता था। इस प्रकार एक कहापण २० मासक का होता था।[2] यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि मासक या मासा उस समय धातुओं के वजन की एक तौल थी, जैसी कि आज भी हमारे देश में है और विभिन्न धातुओं के सिक्कों के लिए विभिन्न वजन मासों (माशों) के रूप में निश्चित थे।

समन्तपासादिका से जो उद्धरण हम ऊपर दे चुके है, उसके ठीक आगे यह आता है "सो च खो पोराणस्स नीलकहापणस्स वसेन, न इतरेसं रुद्रदामकादीनं।" इससे यह विदित होता है कि आचार्य बुद्धघोष ने बुद्धकालीन कहापण सिक्के के लिये "प्राचीन नील कहापण" (पोराणस्स नीलकहापणस्स) शब्द का प्रयोग किया है और उसे रुद्रदामक आदि सिक्कों से विभिन्न प्रकार का बताया है। रुद्रदामक सिक्कों से आचार्य बुद्धघोष का तात्पर्य निश्चयतः रुद्रदामा के द्वारा चलाये गये सिक्कों से है। परन्तु यह रुद्रदामा कौन था, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में निश्चित

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०७।

२. पण, पाद और माष नामक सिक्कों का उल्लेख पाणिनि ने एक सूत्र 'पणपादमाषशताद्यत्' (५।१।३४) में भी किया है।

एक मत नहीं है और न इसका विवेचन हमारे विषय के अनुकूल ही होगा। अधिकतर विद्वानों की यही राय है कि आचार्य बुद्धघोष द्वारा उल्लिखित 'रुद्रदाम्क' सिक्कों का चलाने वाला प्रसिद्ध शक राजा महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथम था, जिसने १३० ई० से १५० ई० तक मालवा में शासन किया। उसके समय के कई अभिलेख भी मिले हैं और जूनागढ़ में प्राप्त एक अभिलेख में उसके नाम और उपाधि का स्पष्ट उल्लेख है। पुरातत्व की खोजों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि उसने चाँदी और ताँबे के सिक्के चलाये थे, जिनमें से कुछ आज प्राप्त हैं।

आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी[1] में सफेद (पण्डर) रंग के, बड़े आकार वाले (पुथुल) तथा चौकोर शकल के (चतुरस्स) कहापणों का उल्लेख किया है। सफेद (पण्डर) रंग से उनका चाँदी के सिक्के होना ही सिद्ध होता है। अट्ठसालिनी मे ही एक दूसरी जगह बुद्धघोषाचार्य ने 'रजत' शब्द की व्याख्या करते हुए उसे 'कहापण' ही बताया है। "रजतं वुच्चति कहापणो।"[2] इससे स्पष्ट विदित होता है कि कहापण अक्सर चाँदी के ही होते थे। यह उल्लेखनीय है कि प्राङ्-मौर्य काल के अनेक चाँदी के कहापण मिले भी हैं। यद्यपि पालि साहित्य के आधार पर कहापणों का चाँदी के सिक्के होना ही सिद्ध होता है, परन्तु यह भी प्रायः सुनिश्चित है कि प्राङ्-मौर्य-काल के कुछ ताँबे के कहापण भी मिले हैं। अतः हम ऐसा मान सकते है कि कहापण चाँदी और ताँबे दोनों ही धातुओं से बुद्ध-काल में बनाये जाते थे। कहापण के अलावा अद्धकहापण, पाद कहापण, मासक, अद्धमासक और काकणिका नामक सिक्के भी प्रचलित थे। काकणिका सम्भवत. उस समय का सबसे छोटा सिक्का था। अट्ठसालिनी के प्रमाण पर हम जानते हैं कि 'मासक' नामक सिक्के ताँबे, लकड़ी और लाख के भी बनाये जाते थे। "लोहमासको, दारुमासको, जतुमासको।"[3]

कहापण की उस समय की क्रय-शक्ति के सम्बन्ध में हमें अनेक उदाहरण जातक-कथाओं में मिलते हैं। उदाहरणतः बैलों की एक जोड़ी चौबीस कहापण

---

१. ३।६२२ (पृष्ठ २२६)।
२. वहीं, ४।५४ (पृष्ठ २५६)।
३. उपर्युक्त के समान।

में आ जाती थी।[1] एक गधे की कीमत प्रायः आठ कहापण थी।[2] घास का एक गट्ठर एक मासक में आ जाता था।[3] एक मजदूर की दैनिक मजदूरी प्रायः मासक या अर्द्धमासक होती थी।[4] घोड़ों की उस समय अधिक कीमत मालूम पड़ती है। अच्छी जाति के घोड़े एक हजार कहापण से लेकर ६००० कहापण तक के आते थे।[5] काशी के बहुमूल्य वस्त्रों की कीमत एक लाख कहापण तक होती थी[6] और उनका उपभोग उच्च वर्ग के लोग ही कर सकते थे। जैसा हम पहले कह चुके हैं, काशी के वस्त्र भारतीय विदेशी व्यापार के निर्यात की मुख्य वस्तु थे। बुद्धकालीन सिक्कों के मूल्य और उनकी क्रय-शक्ति के सम्बन्ध में विनय-पिटक के पाराजिक काण्ड (पाराजिक पालि, पृष्ठ ३११-३२०, श्री नालन्दा संस्करण) में 'चीवर चेतापन्न' शब्द की व्याख्या वाले अंश से महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। परन्तु इस विषय में हम यहाँ विस्तार से नहीं जा सकते।

ताँबे (लोह) और रजत (चाँदी) के अतिरिक्त स्वर्ण की मुद्राएँ भी बुद्ध-काल में प्रचलित थी। स्वर्ण-मुद्राएँ हिरण्य (हिरञ्ञ) कहलाती थीं, जिन्हे हम अशर्फी कह सकते है। हम पहले देख चुके हैं कि अनाथपिण्डिक ने हिरण्यों से ही धरती को ढँक कर जेतवन की भूमि को खरीदा था। सबसे बड़ा सोने का सिक्का बुद्ध-काल में निक्ख (निष्क) कहलाता था और उसका वजन प्रायः २५ धरण या करीब १० औंस होता था।[7] अंगुत्तर-निकाय में "नेक्खं जम्बोनदस्सेव" (सोने के निष्क की भाँति), ऐसा एक उपमा के प्रसंग में कहा गया है।

अनाज के माप (तौल के उदाहरण नहीं मिलते) के लिये सर्वाधिक लोकप्रिय

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३०५-३०६।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३४३।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १३०।

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४७५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२६।

५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८९।

६. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १०।

७. देखिये ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर : कंसाइज पालि इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ १३१; मिलाइये वहीं, पृष्ठ १२६।

साधन बुद्ध-काल में नालि था। जैसे पैसे के लिये लोग 'कहापण' शब्द का प्रयोग करते थे, वैसे ही वे "नालि भर भात" की बात किया करते थे। विनय-पिटक[1] और जातक[2] में अनेक जगह 'नालि' शब्द का प्रयोग हुआ है। आचार्य बुद्धघोष ने अन्धट्ठकथा के प्रमाण पर कहा है कि मगध की एक नालि का वजन १२½ पल होता था। उन्होंने यह भी कहा है कि सिंहल की नालि इससे कुछ बड़ी होती थी और दमिल (तमिल) राष्ट्र की कुछ छोटी।[3] एक पल, ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के अनुसार, करीब ४ औंस के बराबर होता था[4]। इस प्रकार मगध नालि का वजन उनके मतानुसार करीब ५० औंस का होगा। ५० औंस अर्थात् हमारी भारतीय तौल में करीब डेढ़ सेर। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने मगध नालि का वजन करीब एक सेर के बराबर बताया है[5]। परन्तु सम्भव है कि मगध की नालि करीब डेढ़ सेर के बराबर ही होती थी। इसका कारण यह है कि अलमोड़ा तथा उसके आसपास कुछ अन्य पहाड़ी जिलों के गाँवों में आज भी अनाज को नापने के लिए 'नाली' नामक एक माप का प्रयोग किया जाता है। यह एक डमरू के आकार का एक ओर से बन्द लकड़ी का पात्र होता है जिसमें, प्रचलित रिवाज के अनुसार, ३० मुट्ठी अनाज आता है। ३० मुट्ठी अनाज करीब डेढ़ सेर के बराबर बैठता है। अतः लगभग इतना ही वजन हमें मगध-नालि का मानना युक्ति-युक्त जान पड़ता है।[6] अनाज का एक छोटा माप पत्थ या पसत (सं०

---

१. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०।

२. जिल्द चौथी, पृष्ठ ६७; जिल्द छठी, पृष्ठ ३६०।

३. समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ७०२; मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ १०१; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५२-१५३; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०, पद-संकेत २।

४. कन्साइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ १६८।

५. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५९२। इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४०, पद-संकेत १ तथा पृष्ठ ५५९ में २ सेर लिखा है, जो प्रूफ की अशुद्धि मालूम पड़ती है। इसका कारण यह है कि पृष्ठ ५९२ में शब्दों में "प्रायः सेर भर" लिखा है।

६. नालि के ही आकार का अनाज को नापने का एक धातु-निर्मित बर्तन

प्रस्थ) भी होता था, जिसका शाब्दिक अर्थ तो पसों भर है, परन्तु जिसका वजन ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के अनुसार करीब पाव भर होता था, क्योंकि उन्होंने कहा है कि चार पत्थ या पसत का वजन आज के करीब एक सेर के बराबर होता था।[1] कितने पत्थ या पसत की एक नालि होती थी, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। बुद्ध-काल में अनाज नापने का एक अन्य माप दोण (सं० द्रोण) नामक था। यह दोण नालि से बड़ा होता था, यह बात संयुत्त-निकाय के दोणपाक-सुत्त से स्पष्ट प्रकट होती है। इस सुत्त में कहा गया है कि (खाने का शौकीन) राजा प्रसेनजित् पहले द्रोण भर खाता था और खाने के बाद लम्बी-लम्बी साँसें लिया करता था, परन्तु बाद में भगवान् से परिमित आहार की प्रशंसा सुनकर कम खाने लगा और इस प्रकार कम खाते-खाते क्रमशः एक नालि भर ही भोजन करने लगा।[2] तुम्ब नामक एक अन्य माप भी अनाज नापने का बुद्ध-काल में था।[3] दोण से बड़ा एक माप अम्मण होता था। एक अम्मण का वजन, या ठीक कहे तो माप, ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के मतानुसार, करीब ५ बुशल होता था[4] और एक दोण ½ बुशल का होता था।[5] दोण और अम्मण का इस प्रकार बुशल में परिवर्तित करना पूर्णतः

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संग्रहालय में सुरक्षित है, जिसको देखने का अवसर लेखक को सुहृद्वर प्रोफेसर हरिदत्त वेदालंकार के सौजन्य से प्राप्त हुआ। यह बर्तन गढ़वाल जिले के भृगुखाल नामक स्थान में प्राप्त हुआ था और काफी अर्वाचीन युग (सम्वत् १७८८) का है। इस पर एक लेख है जिससे विदित होता है कि इस प्रकार के बर्तनों के माप की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में तत्कालीन राजा की ओर से बर्तन पर एक छाप विशेष भी होती थी। प्रस्तुत बर्तन में करीब डेढ़ सेर अन्न आ सकता है, ऐसा मेरा अनुमान है।

१. कन्साइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ १५४, १७०।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ७६।

३. देखिये ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर : कन्साइज पालि इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ ११३।

४. वहीं, पृष्ठ ३०।

५. वहीं, पृष्ठ १२३।

अनुमानाश्रित ही माना जा सकता है। परन्तु इससे एक बात स्पष्ट है और वह यह कि श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने ४० दोण का एक अम्मण माना है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन अम्मण का अर्थ आजकल का एक मन ही करते हैं।[1] परन्तु इस विषय मे विद्वानों में एक मत नहीं है और न हो सकता है। रतिलाल मेहता ने अम्मण का वजन, ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के पाँच बुशल के स्थान पर, केवल चार बुशल बताया है[2] और भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने जातक के हिन्दी अनुवाद में ११ दोण के बराबर एक अम्मण बताया है[3], जो श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के स्पष्ट विरोध में है। डॉ० टी० डब्ल्यू० रायस डेविड्स् तथा विलियम स्टीड द्वारा सम्पादित पालि-इंगलिश डिक्शनरी (पालि टैक्स्ट सोसायटी, १९२५) में 'अम्मण' शब्द का अर्थ करते हुए उसे अनाज भरने की शक्ति का एक माप विशेष (a certain measure of capacity) मात्र कहा है। वस्तुतः अनाज के बुद्धकालीन मापों के सम्बन्ध में हम आज की भाषा में कुछ निश्चयपूर्वक नही कह सकते, क्योंकि अपने प्रारम्भिक रूप में जिन पसोंभर (पत्थ या पसत) या बाँस की नली (नालि) या तुम्बी (तुम्ब) या दोण (दोनी) पर वे आधारित थे, वे माप ही थे, बाँट नहीं। अतः उनका प्रामाणिक वजन क्या मानना चाहिए, इसके सम्बन्ध में सुनिश्चित रूप से आज निर्णय नहीं किया जा सकता। परन्तु इतना तो निश्चित जान पड़ता है कि पालि का अम्मण ही कुछ घट-बढ़ कर हमारा आज का मन बना है।

लम्बाई और दूरी की माप बुद्ध-काल में अंगुल, विदत्थि, यट्ठि, कुक्कु, हत्थ, उसभ, धनु, गावुत और योजन के रूप में की जाती थी। अंगुल के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। आज भी गाँवों में छोटी लम्बाई की नाप अंगुलों के रूप में की जाती है। मध्यम आकार के अंगुल की लम्बाई करीब .७२ इंच कनिंघम ने निश्चित की है,[4] जो ठीक मानी जा सकती है। विदत्थि, यट्ठि, कुक्कु

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ९।

२. प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २३७।

३. प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८१, पद-संकेत १।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६५९ (परिशिष्ट 'बी')।

और उसभ की लम्बाई के सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हत्थ और धनु की भी लम्बाई की नाप गज, फुट और इंचों में होनी मुश्किल है। फिर भी 'अभिधानप्पदीपिका' के अनुसार पालि की दूरी की मापों को कुछ हद तक समझा जा सकता है। इसके अनुसार ७ अंगुल=१ रतन; ७ रतन=१ यट्ठि (यष्टि); २० यट्ठि=१ उसभ; ८० उसभ=१ गावुत; ४ गावुत=१ योजन। यदि एक यट्ठि (यष्टि) को साढ़े दस फुट मान कर हम गणना करें तो एक उसभ २१० फुट का होगा और एक गावुत १६,८०० फुट या ५६०० गज का होगा। एक योजन इस प्रकार २२,४०० गज का या १२ मील से कुछ अधिक का बैठेगा। परन्तु इसे हम पालि परम्परा का प्रतिनिधि दूरी-माप नहो मान सकते।

गावुत (सं० गव्यूति) और योजन स्थानों की दूरी नापने के बुद्ध-काल में दो प्रचलित माप थे, जिनका प्रयोग पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं मे किया गया है। उदाहरणतः, जैसा हम पहले देख चुके है, पावा से कुसिनारा की दूरी ३ गावुत बताई गई है, गया से बुद्धगया की तीन गावुत, वैशाली के तीन पर-कोटों में से प्रत्येक को एक दूसरे से एक गावुत दूर बताया गया है और कहा गया है कि कौशाम्बी के घोसिताराम और बदरिकाराम के बीच की दूरी एक गावुत थी, आदि। योजनों के रूप मे एक नगर या ग्राम से दूसरे नगर या ग्राम की दूरी के सम्बन्ध में अनेक विवरण हम तीसरे परिच्छेद में दे चुके हैं। जैसा हम अभी देख चुके है, पालि परम्परा कें अनुसार एक योजन चार गावुत का होता था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है, "योजनं पि चतुगावुतमत्तमेव।" गावुत या योजन की दूरी आजकल के मीलों की परिभाषा में क्या मानी जाय, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में निश्चित एक मत नहीं है। श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के अनुसार एक गावुत आजकल के दो मील से कुछ कम का होता था।[1] डा० विमलाचरण लाहा के मतानुसार वह दो मील से कुछ अधिक होता था।[2] इस प्रकार इन दोनों विद्वानों के मतानुसार योजन, जैसा उसे पालि परम्परा ने प्रयुक्त किया है, ८ मील से कुछ कम या अधिक

---

१. कन्साइज पालि इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ ९१।

२. इण्डोलोजीकल स्टडीज, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३३३, पद-संकेत ३।

होता था। डॉ० टी० डब्ल्यू रायस डेविड्स् तथा श्रीमती रायस डेविड्स् ने भी पालि के योजन को ७ और ८ मील के बीच की दूरी ही माना है।[१] चीनी यात्री फा-ह्यान ने अपने यात्रा-विवरण में स्थानों की दूरियों का उल्लेख योजन के रूप मे किया है। कनिघम की गणना के अनुसार फा-ह्यान का एक योजन ६.७१ मील के बराबर था।[२] यूआन् चुआङ् ने योजनों के रूप में भी स्थानों की दूरी का विवरण दिया है और साथ ही चीनी माप 'ली' का भी, ४० 'ली' को एक योजन के बराबर मानकर[३], प्रयोग किया है। यद्यपि यूआन् चुआङ् ने योजन की निश्चित दूरी के सम्बन्ध में स्पष्टतापूर्वक कुछ नहीं कहा है, उसने उसे इतनी दूरी बताया है जितनी एक राज-सेना एक दिन में चल सके।[४] फिर भी यूआन् चुआङ् ने अपने विवरणों में योजन को एक निश्चित माप मानकर प्रयुक्त किया है, जिसमें एकरूपता है। इसी आधार पर कनिंघम ने यूआन् चुआङ् के द्वारा योजनों के रूप में दी गई विभिन्न स्थानों की दूरी का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि यूआन् चुआङ् का एक योजन ७.७५ मील के बराबर था।[५] ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने एक योजन को ७ मील के बराबर माना है।[६] इस प्रकार हम देखते हैं कि पालि परम्परा के योजन और चीनी यात्रियों

---

१. बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज, दि स्टोरी ऑव दि लिनियेज पृष्ठ १९, पाद-टिप्पणी।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६५६ (परिशिष्ट 'बी')।

३. वहीं, पृष्ठ ६५४। इस प्रकार ज्ञात होगा कि यूआन् चुआङ के करीब ५ या ६ 'ली' एक मील के बराबर होंगे। फा-ह्यान की 'ली' की माप इससे भिन्न है। उसके अनुसार तीन 'ली' एक मील के बराबर मानने पड़ेंगे। देखिये गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ उन्नीस (टर्म्स यूज्ड बाई फा-ह्यान)।

४. वाटर्सः औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४१।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६५७ (परिशिष्ट 'बी')।

६. कन्साइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ २०५; मिलाइये ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ १७।

के द्वारा प्रयुक्त योजन में अधिक अन्तर नहीं है। दोनों प्राय: ७ मील या उसके आसपास ८ मील के बीच में बैठते हैं।[1] यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि एक योजन को सात या आठ मील का मान कर योजनों के रूप में विभिन्न स्थानों की बहु

---

१. डा० मललसेकर ने अपनी 'डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स' की दोनों जिल्दों में बीसों जगह पालि विवरणों के अनुसार विभिन्न स्थानों की दूरियों का उल्लेख करते हुए पालि के 'योजन' के लिये अंग्रजी 'लीग' शब्द का प्रयोग किया है, जिसे ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि एक 'लीग' करीब ३ मील के बराबर होता है। श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने अपनी 'कन्साइज पालि-इंगलिश डिक्शनरी' (पृष्ठ ९१) में पालि 'गावुत' के लिये अंग्रेजी 'लीग' शब्द का पर्याय दिया है। यह कितना आश्चर्यजनक है कि जब कि एक योजन में चार गावुत होते हैं, उक्त दोनों विद्वान् इन दोनों के लिए एक ही 'लीग' शब्द का प्रयोग करते हैं। मललसेकर ने तो और भी गड़बड़ी की है। योजन के साथ-साथ कहीं-कहीं गावुत के लिये भी 'लीग' शब्द का व्यवहार कर उन्होंने उसके भौगोलिक महत्व को ही नष्ट कर दिया है। उदाहरणत:, पालि विवरण के आधार पर हम जानते हैं कि राजगृह से नालन्दा एक योजन पर था और राजगृह और नालन्दा के बीच में राजगृह से तीन गावुत अर्थात् पौन योजन की दूरी पर बहुपुत्तक निग्रोध था। अब इस सम्बन्ध में डा० मललसेकर लिखते हैं कि नालन्दा राजगृह से एक 'लीग' पर था ("......A town near राजगह, one league away." डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६) और राजगृह और नालन्दा के बीच में राजगृह से तीन 'लीग' के फासले पर बहुपुत्तक निग्रोध था! ("Was on the road from राजगह to नालन्दा and was three leagues from राजगह।" डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७३)। कितना असम्भव और असंगत और सम्पूर्ण वैज्ञानिक भाव को उच्छिन्न करने वाला है यह विवरण! डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने "उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास" पुस्तक के पृष्ठ ३, १२ और १३ में पालि योजन को तीन मील के बराबर मान कर गणना की है, जिसे पालि-परम्परा या चीनी यात्रियों के विवरणों से कोई समर्थन नहीं मिल सकता।

दूरी जो पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में दी गई है, मार्गों के सीधे या चक्करदार रूप को समझते हुए, उन स्थानों की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में भी प्राय: ठीक बैठ जाती है। अतः पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में स्थानों की दूरियों के सम्बन्ध में योजन-सम्बन्धी जो विवरण दिये गये हैं, उनका निश्चित भौगोलिक महत्व है। उनकी प्रामाणिकता इस बात से प्रकट होती है कि जिन बौद्ध स्थानों की खोज हो चुकी है, उनकी पालि परम्परा में निर्दिष्ट दूरी आज भी प्राय: उतनी ही है जितनी पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में उसे बताया गया है। बल्कि यह कहना चाहिए कि जिन बौद्ध स्थानों की आज निश्चित रूप से पहचान हो चुकी है, उनकी प्रामाणिकता की कसौटी ही यह है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में उनकी जो पारस्परिक दूरी योजनों के रूप में वर्णित है, वह उनकी आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में भी लगभग ठीक बैठे। जिन स्थानों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं हो सकता, उनकी पहचान की प्रामाणिकता सन्दिग्ध ही मानी जायगी। पालि परम्परा के अलावा भारतीय साहित्य के अन्य अंगों जैसे रामायण, महाभारत, पुराणों और जैन साहित्य में भी दूरी की माप के लिए योजनों का प्रयोग किया गया है, परन्तु पालि परम्परा के निश्चित और भौगोलिक योजन से उनकी अनेक विभिन्नताएँ हैं, जिनके तुलनात्मक अध्ययन में जाना यहाँ ठीक न होगा।

परिशिष्ट

१—भौगोलिक नामों की अनुक्रमणिका

भ

ल

व

२—उद्धृत ग्रन्थों की सूची

लेखक ने प्रयत्न किया है कि जिन पालि ग्रन्थों के मूल संस्करण देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं, उनका इस प्रबन्ध में उपयोग किया जाय। यही बात पालि ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादों के सम्बन्ध में भी है। जिन ग्रन्थों के मूल संस्करण देवनागरी लिपि में उपलब्ध नहीं हैं, केवल उनके लिये अन्य संस्करणों का उपयोग किया गया है। पालि, प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में लिखित जिन ग्रन्थों से इस निबन्ध में उद्धरण दिये गये हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :

पालि

मूल ग्रन्थ और उनके अनुवाद

दीघ-निकाय—(मूल) दीघ-निकायो......पठमो भागो...सीलक्खन्धो, एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई विश्वविद्यालय, १९४२। इस भाग में सुत्त-संख्या १-१३ संकलित हैं। दीघ-निकायो... दुतियो विभागो...एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई विश्वविद्यालय, १९३६। इस भाग में सुत्त-संख्या १४-२३ संकलित है। सुत्त-संख्या २४-३४ अभी तक देवनागरी लिपि में अप्रकाशित हैं।[1]

हिन्दी अनुवाद...भिक्षु राहुल सांकृत्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप, एम० ए०-कृत, प्रथम संस्करण, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९४२। यह पूरे दीघ-निकाय का हिन्दी अनुवाद है।

१, २. यह प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक के प्रेस में दिये जाने के कुछ समय पूर्व ही दीघ और मज्झिम निकायों के देवनागरी संस्करण भिक्षु जगदीश काश्यप के प्रधान सम्पादकत्व में सम्पादित होकर, क्रमशः तीन-तीन जिल्दों में, बिहार

मज्झिम-निकाय—(मूल) मज्झिम निकायो—मज्झिम पण्णासकं, एन० के० भागवत द्वारा दो भागों में सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई विश्वविद्यालय, १९३७-१९३८। इन दोनों भागों में केवल सुत्त ५१-१०० संगृहीत हैं। पहले भाग में सुत्त ५१-७० तथा दूसरे में सुत्त ७१-१००। सुत्त १-५० तथा १०१-१५२ अभी अपने मूल रूप में नागरी लिपि में नहीं आ पाये हैं[२]।

हिन्दी अनुवाद...राहुल सांकृत्यायन-कृत, प्रथम संस्करण, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९३३। यह अनुवाद पूरे मज्झिम-निकाय का है।

संयुत्त-निकाय—देवनागरी लिपि में अभी इस निकाय के मूल पालि का कोई संस्करण नहीं निकला है[३]। रोमन लिपि में संयुत्त-निकाय का संपादन लियोन फियर ने पाँच भागों में किया है। पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८८४-१८९८। छठा भाग अनुक्रमणी के रूप में है, जिसे श्रीमती रायस डेविड्स् ने तैयार किया है। लन्दन, १९०४।

हिन्दी अनुवाद (दो भाग) भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० और त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९५४। यह संयुत्त-निकाय का पूरा अनुवाद है।

अंगुत्तर-निकाय—इस निकाय का अभी कोई संस्करण देवनागरी लिपि में नहीं निकला है। हिन्दी अनुवाद भी प्रथम तीन निपातों का ही अब तक हुआ है, जिसे भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने किया है। महाबोधि सभा, कलकत्ता, ने सन् १९५७ में इसे प्रकाशित किया है। रोमन लिपि में इस निकाय का सम्पादन रिचार्ड मॉरिस तथा एडमंड हार्डी ने पाँच जिल्दों में किया है। पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८८५-१९००। एम० हण्ट ने छठे भाग के

राज्य के पालि प्रकाशन मण्डल द्वारा प्रकाशित कर दिये गये हैं (सन् १९५८ई०)। उद्धरणों को मिलाने में मैंने अब तक के प्रामाणिकतम इन संस्करणों से सहायता ली है।

३. अभी हाल में (सन् १९५९ ई० में) चार जिल्दों में प्रकाशित। प्रकाशक तथा सम्पादक उपर्युक्त ही। यह संस्करण मुझे प्रूफ देखते समय उपलब्ध हुआ, अतः इसका मैं अंशतः ही उपयोग कर सका हूँ।

रूप में अनुक्रमणी तैयार की है, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९१०। उद्धरण इसी रोमन संस्करण से दिये गये हैं।

खुद्दक-निकाय[1]

खुद्दक-पाठ—मूल पालि और हिन्दी अनुवाद, भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९४५। इस लघु ग्रन्थ का देवनागरी संस्करण महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप ने किया है, जिसे उत्तम भिक्षु ने प्रकाशित किया है, बुद्धाब्द २४८१ (१९३७ ई०)।

धम्मपद—मूल पालि तथा हिन्दी अनुवाद, महापंडित राहुल सांकृत्यायन-कृत, प्रथम संस्करण, प्रयाग, १९३३। अन्य कई संस्करण और अनुवाद भी उपलब्ध है, परन्तु लेखक ने इसका ही उपयोग किया है।

उदान—मूल पालि देवनागरी लिपि में महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, भिक्षु उत्तम द्वारा प्रकाशित, २४८१ बुद्धाब्द (१९३७ ई०)।

हिन्दी अनुवाद...भिक्षु जगदीश काश्यप-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बुद्धाब्द, २४८२।

इतिवुत्तक—मूल पालि...देवनागरी लिपि में महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, बुद्धाब्द २४८१ (१९३७ ई०)।

हिन्दी अनुवाद...भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बुद्धाब्द २४९९।

सुत्त-निपात—मूल पालि पाठ तथा हिन्दी अनुवाद, भिक्षु धर्मरत्न एम० ए०-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९५१।

---

१. खुद्दक-निकाय के कई ग्रन्थों (जिनमें जातक—मूलगाथामात्र—भी सम्मिलित है) के देवनागरी संस्करण इस पुस्तक की छपाई समाप्त होने के कुछ पूर्व ही निकले हैं, जिनका मैंने यथाशक्य उपयोग किया है।

विमानवत्थु-पेतवत्थु-थेरगाथा——ये तीनों ग्रन्थ महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित हैं, बुद्धाब्द २४८१। थेरगाथा का हिन्दी अनुवाद भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० ने किया है, जिसे महाबोधि सभा, सारनाथ ने बुद्धाब्द २४९९ में प्रकाशित किया है।

थेरीगाथा——इस ग्रन्थ का भी उपर्युक्त विद्वानों ने देवनागरी लिपि में सम्पादन किया है, बुद्धाब्द २४८१। परन्तु लेखक को वह उपलब्ध न हो सकने के कारण उसने इस ग्रन्थ का दूसरा देवनागरी संस्करण प्रयुक्त किया है, जिसे एन० के० भागवत ने सम्पादित किया है। बम्बई विश्वविद्यालय, १९३७। प्रस्तुत लेखक ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद "थेरी-गाथाएँ" शीर्षक से किया है, जिसे सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, ने प्रकाशित किया है, १९५१।

जातक——रोमन लिपि में वी० फॉसबाल द्वारा सम्पादित, ६ जिल्दें, लन्दन, १८७७-९६। सातवीं जिल्द, जो अनुक्रमणी के रूप में है, एण्डरसन द्वारा तैयार की गई है, लन्दन, १८९७। नागरी लिपि में जातक या जातकट्ठकथा का केवल प्राथमिक अंश ही एक खण्ड के रूप में अभी तक प्रकाशित हो सका है। जातकट्ठकथा, पठमो भागो, भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, जुलाई १९५१।

अभी हाल में (सन् १९५९ ई०) मूल जातक (केवल गाथा भाग) भी दो जिल्दों में भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित होकर श्री नालन्दा से निकला है, जिसका उपयोग (केवल गाथा भाग होने के कारण) मैं अंशतः ही कर सका हूँ, विशेषतः तत्सम्बन्धी उद्धरणों को मिलाने में।

हिन्दी अनुवाद. . .भदन्त आनन्द कौसल्यायन-कृत, छह खण्डों में प्रकाशित। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। चूँकि अभी इस अनुवाद की अनुक्रमणी नहीं निकली है, इसलिये सब जगहों पर इसका प्रयोग करना सम्भव नहीं हो सका है। जहाँ इस अनुवाद का प्रयोग किया गया है, वहाँ वैसा स्पष्टतः उल्लेख कर दिया गया है। अन्य सब स्थानों पर, जहाँ कोई निर्देश नहीं किया गया है, उद्धरणों को फॉसबाल द्वारा सम्पादित रोमन संस्करण से समझना चाहिए।

निद्देस—महानिद्देस...लुई डे ला वेली पूसे तथा ई० जे० थॉमस द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९१६-१७।

चुल्लनिद्देस—डॉ० स्टीड द्वारा सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९१८।

अपदान—दो भागो में रोमन लिपि में एम० ई० लिले द्वारा सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन।

बुद्धवंस—
चरियापिटक— } ये दोनों ग्रन्थ महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा देवनागरी लिपि में सम्पादित हैं, बुद्धाब्द २४८१ (१९३७ ई०)।

विनय-पिटक—एच० ओल्डनबर्ग द्वारा रोमन लिपि में पाँच ज़िल्दों में सम्पादित, लन्दन, १८७९-८३। बम्बई विश्वविद्यालय ने विनय-पिटक के केवल महावग्ग का देवनागरी लिपि में दो भागों में प्रकाशन किया है। महावग्गो (विनय पिटकं), पठमो भागो, खन्धका १-५, एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई, १९४४। महावग्गो (विनय पिटकं), दुतियो भागो, खन्धका ६-१०, एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई १९५२। अभी हाल में (१९५६-५८) सम्पूर्ण विनय-पिटक पाँच जिल्दों में भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित हो कर श्री नालन्दा से निकला है, जिसका उपयोग उद्धरणों को मिलाने मे मैंने किया है।

हिन्दी अनुवाद...महापंडित राहुल सांकृत्यायन-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९३५। यह अनुवाद सम्पूर्ण विनय-पिटक का है।

धम्मसंगणि—प्रोफेसर पी० वी० बापट तथा आर० डी० वड़ेकर द्वारा देवनागरी लिपि में सम्पादित, प्रथम संस्करण, भण्डारकर ओरियण्टल सीरीज़, संख्या २, पूना, १९४०।

विभंग—श्रीमती सी० ए० एफ० रायस डेविड्स् द्वारा रोमन लिपि मे सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९०४।

कथावत्थु—ए० सी० टेलर द्वारा रोमन लिपि में दो जिल्दों में सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८९४, १८९७।

दीघ-निकाय की अट्ठकथा—
(सुमंगलविलासिनी)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, तीन जिल्दें।
मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा—
(पपंचसूदनी)—अलुविहार सीरीज़ में प्रकाशित सिंहली संस्करण, दो जिल्दें।
संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा—
(सारत्थप्पकासिनी)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, तीन जिल्दें।
अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा—
(मनोरथपूरणी)—साइमन हेवावितरणे बिक्वेस्ट सीरीज़, कोलम्बो, में प्रकाशित सिंहली संस्करण।
खुद्दक-पाठ और सुत्त-निपात की
अट्ठकथा (परमत्थजोतिका)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, दो जिल्दें।
धम्मपदट्ठकथा—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, पाँच जिल्दें।
उदान-अट्ठकथा—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण।
विमानवत्थु-अट्ठकथा
पेतवत्थु-अट्ठकथा } उपर्युक्त के समान।
थेरगाथा-अट्ठकथा—साइमन हेवावितरणे विक्वेस्ट सीरीज़ में प्रकाशित सिंहली संस्करण।
थेरीगाथा-अट्ठकथा—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण।
अपदान-अट्ठकथा
बुद्धवंस-अट्ठकथा } साइमन हेवावितरणे बिक्वेस्ट सीरीज़ में प्रकाशित सिंहली संस्करण।
विनय-पिटक की अट्ठकथा—
(समन्तपासादिका)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, चार जिल्दें।
धम्मसंगणि की अट्ठकथा—प्रो० पी० वी० बापट तथा आर० डी० बड़ेकर द्वारा
(अट्ठसालिनी)—देवनागरी लिपि में सम्पादित, भण्डारकर ओरियन्टल सीरीज़, संख्या ३, प्रथम संस्करण, पूना, १९४२।
मिलिन्दपञ्हो—आर० डी० बड़ेकर द्वारा देवनागरी लिपि में सम्पादित, प्रथम संस्करण; बम्बई विश्वविद्यालय, १९४०।

हिन्दी अनुवाद. . : भिक्षु जगदीश काश्यप-कृत, भिक्षु उ कित्तिमा द्वारा प्रकाशित, बनारस, १९३७। कहीं-कहीं इस अनुवाद के द्वितीय संस्करण का भी उल्लेख किया गया है, जिसे भिक्षु महानाम, प्रधान मन्त्री, धर्मोदय सभा ने सन् १९५१ में प्रकाशित किया है। जहाँ इस संस्करण से उद्धरण हैं, वहाँ वैसा (द्वितीय संस्करण) उल्लेख कर दिया गया है। अन्य सब स्थलों पर प्रथम संस्करण से ही उद्धरण समझने चाहिये।

विसुद्धिमग्ग—देवनागरी लिपि में धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४०।

दीपवंस—एच० ओल्डनबर्ग द्वारा सम्पादित, लन्दन, १८७९।

महावंस—मूल पालि, महावंसो, बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।

हिन्दी अनुवाद. . . भदन्त आनन्द कौसल्यायन-कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९४२।

महावंस टीका—
अनागतवंस—
सासनवंस—
महाबोधिवंस—
} पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण।

अभिधम्मत्थसंगह—देवनागरी संस्करण, धर्मानन्द कोसम्बी-सम्पादित, महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस, बुद्धाब्द २४८५।

विसुद्धिमग्गदीपिका—विसुद्धिमग्ग की टीका. . . धर्मानन्द कोसम्बी-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९४३।

प्राकृत

भगवती-वियाहपण्णत्ति—आगमोदय समिति, बम्बई, १९२१।

उवासगदसाओ—एन० ए० गोरे द्वारा सम्पादित, पूना, १९५३।

जम्बुदीवपण्णत्ति—बम्बई, १९२०।

उत्तराध्ययन-सूत्र और सूत्रकृतांग सूत्र—एच० जेकोबी द्वारा अंग्रेज़ी में अनुवादित, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, जिल्द पैंतालीसवीं, १८९५।

विविधतीर्थकल्प (संस्कृत और प्राकृत)—प्रथम भाग, मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १०, शान्तिनिकेतन, विक्रमाब्द १९९१।

संस्कृत

अभिधर्म-कोश——महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा स्वकीय नालन्दिका टीका-सहित सम्पादित, काशी विद्यापीठ, बनारस, सं० १९८८।

अवदान-शतक——जे० एस० स्पेयर द्वारा सम्पादित (बिबलियोथेका बुद्धिका), दो जिल्दे। १९०६-९। डॉ० प० ल० वैद्य के सम्पादकत्व में इस ग्रन्थ का देवनागरी संस्करण सन् १९५८ में मिथिला विद्यापीठ से निकला है, जिससे उद्धरणों को मिलाने में मैंने सहायता ली है। उद्धरण स्पेयर के संस्करण से ही दिये गये हैं।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता राजेन्द्रलाल मित्र——सम्पादित, बिब्लियोथेका इण्डिका, १८८८।

काव्यमीमांसा (राजशेखर-कृत)——गायकवाड़ ओरीयन्टल सीरीज़, संख्या १।

गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्——डॉ० नलिनाक्ष दत्त द्वारा, प्रोफेसर डी० एम० भट्टाचार्य तथा विद्यावारिधि पं० शिवनाथ शर्मा की सहायता से, सम्पादित, जिल्द पहली; जिल्द दूसरी; जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, द्वितीय, तृतीय।

दिव्यावदान——ई० बी० कॉवल तथा आर० ए० नील द्वारा सम्पादित, केम्ब्रिज, १८८६। उद्धरण इसी संस्करण से दिये गये हैं। अभी हाल में (१९५९ ई०) डॉ० प० ल० वैद्य द्वारा सम्पादित होकर दिव्यावदान का देवनागरी संस्करण मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा से निकला है, जो कॉवल और नील के संस्करण का प्रायः पुनर्मुद्रण ही है। उद्धरण मिलाने में मुझे इस संस्करण से सहायता मिली है।

नारद-पुराण——मूल, हिन्दी अनुवाद-सहित, अनुवादक ऋ० कु० रामचन्द्र शर्मा, मुरादाबाद, १९४०।

बुद्धचरित——मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद...सम्पादक और अनुवादक, सूर्यनारायण चौधरी, प्रथम भाग, जनवरी १९४८, द्वितीय संस्करण, संस्कृत भवन, कठौतिया (बिहार); द्वितीय भाग, मार्च १९५३, द्वितीय संस्करण।

महावस्तु——ई० सेनाँ द्वारा सम्पादित, तीन जिल्दें, पेरिस, १८८२-९७।

मेघदूतम्——पं० रामतेजपाण्डेयेन संस्कृतम्, पंडित पुस्तकालय काशी, प्रथमावृत्ति, सं० २००६।

मञ्जुश्रीमूलकल्प—टी० गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित, त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज (१९२७)।

ललितविस्तर—एस० लैफमैन द्वारा सम्पादित, दो खण्ड, हाल, १९०२-१९०८। उद्धरण इसी संस्करण के पहले खण्ड से दिये गये हैं। दूसरे खण्ड में पाठ-भेद हैं। अभी हाल में (१९५८ ई०) मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा से डॉ० प० ल० वैद्य के सम्पादकत्व में इस ग्रन्थ का देवनागरी संस्करण निकला है, जिससे उद्धरणों को मिलाने में मैंने सहायता ली है; यद्यपि नाम-सूची न होने के कारण कुछ कठिनाई हुई है।

सौन्दरनन्द—मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद......सम्पादक और अनुवादक, सूर्यनारायण चौधरी, अगस्त १९४८, प्रथम संस्करण, संस्कृत भवन, कठौतिया (बिहार)।

हिन्दी

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन—बुद्धचर्या, द्वितीय संस्करण, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस १९५२ (बुद्धाब्द २४९५)।

साहित्य निबन्धावली, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९४९ ई०।

महामानव बुद्ध, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ, १९५६ ई०।

डॉ० राजबली पाण्डेय—गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, प्रकाशक ठाकुर महातम राव, पब्लिशर और बुक्सेलर, गोरखपुर, सं० २००३ वि०।

भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य—कुशीनगर का इतिहास, द्वितीय संस्करण, कुशीनगर प्रकाशन, कुशीनगर, देवरिया, बुद्धाब्द २४९३।

धर्मानन्द कोसम्बी—भगवान् बुद्ध (श्रीपाद जोशी-कृत हिन्दी अनुवाद), साहित्य अकादेमी की ओर से राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, प्रथम हिन्दी संस्करण, १९५६।

भारतीय संस्कृति और अहिंसा (हिन्दी अनुवाद), हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, जून १९४८।

डॉ० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी—उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १९५६।

शान्ति भिक्षु शास्त्री—महायान, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन। (प्रकाशन-तिथि नहीं दी गई है)

अंग्रेजी

कनिंघम (ए०)—एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार शास्त्री द्वारा सम्पादित), चक्रवर्ती चटर्जी एंड कं० कलकत्ता, १९२४।

कुमारस्वामी (आनन्द) तथा हार्नर (आई० बी०)—दि लिविंग थॉट्स् ऑव गौतम दि बुद्ध, केसिल एण्ड कम्पनी, लन्दन, १९४८।

गाइल्स (एच० ए०)—दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, केम्ब्रिज, १९२३। द्वितीय आवृत्ति, रटलेज एण्ड केगन पॉल, लन्दन, १९५६।

गायगर (विल्हेल्म)—पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज, (बटाकृष्ण घोष-कृत अंग्रेजी अनुवाद), कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४३।

घोष (नगेन्द्रनाथ)—एन अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, १९३५।

थॉमस (ई० जे०)—दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज़ लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, रटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड, लन्दन, तृतीय संस्करण, पुनर्मुद्रित, १९५२। हिस्ट्री ऑव बुद्धिस्ट थॉट, लन्दन, १९३३।

दे (नन्दोलाल)—ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियण्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, लन्दन, १९२७।

पार्जिटर (एफ० ई०)—एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल ट्रेडीशन, लन्दन, १९२२।

फिक (रिचार्ड)—दि सोशल ऑर्गेनिज़ेशन इन नार्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज़ टाइम (शिशिर कुमार मैत्र का अंग्रेजी अनुवाद), कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९२०।

फुशेर (ए०)—नोट्स औन् दि एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव गन्धार, एच० हारग्रीव्स का अंग्रेज़ी अनुवाद, सुपरिण्टेण्डेण्ट, गवर्नमेन्ट प्रिंटिंग, कलकत्ता, १९१५।

बड़ुआ (वेणीमाधव)––गया एण्ड बुद्धगया, संशोधित संस्करण, कलकत्ता, १९३५।
ओल्ड ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन्स इन दि उदयगिरि एण्ड खण्डगिरि, केव्स, कलकत्ता, १९२९।

बड़ुआ और सिंह––भरहुत इन्सक्रिप्शन्स, कलकत्ता, १९२६।

बील (एस०)––बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वैस्टर्न वर्ल्ड, लन्दन, १८८०।

बुद्धदत्त महाथेर (ए० पी०)––कंसाइज़ पालि-इंगलिश डिक्शनरी, कोलम्बो, १९४९।

भण्डारकर (डी० आर०)––कारमाइकेल लेक्चर्स औन् एन्शियन्ट हिस्ट्री ऑव इण्डिया, १९१८। कलकत्ता, १९१९।
कारमाइकेल लेक्चर्स औन् एन्शियण्ट इण्डियन् न्यूमिस्मेटिक्स, १९२१। कलकत्ता, १९२२।
अशोक (कारमाइकेल लेक्चर्स, १९२३), कलकत्ता, १९२५।

मजूमदार (रमेशचन्द्र) तथा पुसल्कर (ए० डी०)––दि कल्चर एण्ड हिस्ट्री ऑव दि इण्डियन पीपुल, जिल्द दूसरी, भारतीय विद्याभवन, द्वितीय संस्करण, १९५३।

मललसेकर (जी० पी०)––डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, दो जिल्दें, लन्दन, १९३७।

मुकर्जी (राधाकुमुद)––ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन शिपिंग, लन्दन, १९१२।

मुखर्जी (पूर्णचन्द्र)––ए रिपोर्ट औन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दि एण्टिक्विटीज़ इन दि तराई, नेपाल, एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु (सुपरिण्टेण्डेण्ट ऑव गवर्नमेण्ट प्रिंटिंग, कलकत्ता, १९०१)।

मेकक्रिंडल (जे० डब्ल्यू०)––एन्शियण्ट इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, वेस्टमिस्टर, १९०१।

मेहता (रतिलाल)––प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, बम्बई, १९३९।

मेकडोनल (ए० ए०) तथा कीथ (ए. बी.)––दि वैदिक इण्डेक्स ऑव नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स्, दो जिल्दे, लन्दन, १९१२।

मोतीचन्द्र––ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज़ इन दि महाभारत, उपायन पर्व; यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, लखनऊ, १९४५।

रॉकहिल (डब्ल्यू० डब्ल्यू०)——दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, लन्दन, १८८४ (ट्रुबनर्स ऑरियन्टल सीरीज़)।

रायचधौरी (हेमचन्द्र)——पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९५३ (छठा संस्करण)।

स्टडीज़ इन इंडियन एंटिक्विटीज़, कलकत्ता, १९३२।

रायस डेविड्स् (टी० डब्ल्यू०)——बुद्धिस्ट इंडिया, सुशील गुप्त, इण्डिया लिमिटेड, कलकत्ता, द्वारा प्रकाशित, प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०।

रायस डेविड्स् (टी० डब्ल्यू०) और विलियम स्टीड द्वारा सम्पादित——पालि-इंगलिश डिक्शनरी, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९२५।

रायस डेविड्स् (सी० ए० एफ०, श्रीमती)——ए बुद्धिस्ट मेनुअल ऑव साइकोलोजीकल एथिक्स, (धम्मसंगणि का अंग्रेज़ी अनुवाद), लन्दन, १९००।

रेप्सन (ई० जे०) सम्पादित——केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, एन्शियन्ट इण्डिया, केम्ब्रिज, १९२२।

लाहा (विमलाचरण)——ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, केगन पाल, ट्रैंच ट्रुबनर एण्ड कम्पनी, लन्दन, १९३२।

इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज़्म, लुज़ाक एण्ड कम्पनी, लन्दन, १९४१।

ज्योग्रेफीकल एसेज़, प्रथम भाग, कलकत्ता, १९३८।

सम क्षत्रिय ट्राइब्स ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, थेकर स्पिक एंड कम्पनी, कलकत्ता और शिमला, १९२३।

ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, प्रथम संस्करण, पूना, १९४३ (भण्डारकर ओरियन्टल सीरीज़, संख्या ४)।

हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर, दो जिल्दे, केगन पॉल, लन्दन, १९३३।

इण्डोलोजीकल स्टडीज़, प्रथम भाग, इण्डियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता, १९५०..., द्वितीय भाग, इण्डियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता, १९५२.. , तृतीय भाग, गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद, १९५४।

दि लाइफ एण्ड् वर्क ऑव बुद्धघोष, थेकर स्पिंक एण्ड कम्पनी, कलकत्ता और शिमला, १९२३।

हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, सोसायटी एशियाटिक डि पेरिस, फ्रांस, १९५४।

——सम्पादित, बुद्धिस्टिक स्टडीज़, कलकत्ता, १९३१।

लेजे (जे०)——दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान (ऑक्सफर्ड १८८६)।

वाटर्स (थॉमस)——औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, दो जिल्दें, टी० डब्ल्यू० रायस डेविड्स् तथा एस० डब्ल्यू० बुशल द्वारा सम्पादित, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०४-१९०५।

शोफ (डब्ल्यू० एच०)——द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित तथा सम्पादित "दि पेरीप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी" लन्दन, १९१२।

स्मिथ (वी० ए०)——अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, चतुर्थ संस्करण, ऑक्सफर्ड, १९२४।

हरप्रसाद शास्त्री——मगधन लिटरेचर, कलकत्ता, १९२३।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	१२	महासाकवनखण्डो	महासाकवनसण्डो
३१	१	कुण्डिधान वन	कुण्डधान वन
४१	२७	पंचसूदनी	पपञ्चसूदनी
६७	११	अम्बखतिय	अम्बरवतिय
९२	१२	मल्लब	मल्ल
९७	आरम्भिक पाद-िप्पणी—	यह पृष्ठ ९६ की आरम्भिक पाद-टिप्पणी का ही आगे का अंश है	
१०७	पद-संकेत की तीसरी पंक्ति	विरिच	विरिंच
११५	११	जीवकम्बन	जीवकम्बवन
१४०	पद-संकेत की छठी पंक्ति	नागपुप्फसमय	नागपुप्फसमये
१४२	१३	गन्धमादन को (कैलाश) नन्दोलाल दे ने	गन्धमादन को नन्दो-लाल दे ने
१५१	१०	पण्डकर	पंण्डरक
१५४	६	दक्षिणपथ	दक्षिणापथ
१५९	१३	दक्षिणपथ	दक्षिणापथ
२१४	१	प्रस्कन्दत	प्रस्कन्दक
२१४	२	वलाकत्थ	बलाकल्प
२२९	३	पटिलिपुत्र	पाटलिपुत्र
२३९	२	विच्छवियों	लिच्छवियों
२७२	१	कामभूम-सुत्त	कामभू-सुत्त

३२७	३	पाव	पावा
३३९	१८	चेतिया चेतिय	चेति या चेतिय
३४०	४	कुरुसु	कुरूसु
३९४	२	वलुव	वेलुव
४२९	११	सुवर्णद्वीप	सुवर्णभूमि
४८४	३	"सुट्ठ"	"सुरट्ठ"
५३९	२	दिव्यवदान	दिव्यावदान
५३९	२२	सुवर्णद्वीप	सुवर्णभूमि